कथा संकल्प

पाठ्य पुस्तक

B.Com. / MBS B.Com. (Hon.)

B.Com. (Insurance) / Language Under AECC

बी.कॉम / एमबीएस बी.कॉम (हानर्स) /

बी.कॉम (इन्शुरेन्स) / एईसीसी भाषा के अन्तर्गत

द्वितीय सेमिस्टर / II Semester

सम्पादक

डॉ शाकिरा खानुम

डॉ शैलजा

डॉ सुलोचना एच.आई.

BENGALURU CITY UNIVERSITY

कठिन शब्दार्थ

रोशनी = प्रकाश, इलाज = शुश्रुषा,
सींचा = देखभाल, गरीब = कंगाल,
ब्याह = विवाह, ख्वामख्वाह = बिना कारण,
मेहनत = श्रम, परवाह = ध्यान,
आखिर = अंतिम,

कथा संकल्प

पाठ्य पुस्तक

B.Com. / MBS B.Com. (Hon.)
B.Com. (Insurance) / Language Under AECC
बी.कॉम / एमबीएस बी.कॉम (हानर्स) /
बी.कॉम (इन्शुरेन्स) / एईसीसी भाषा के अन्तर्गत
द्वितीय सेमिस्टर / II Semester

सम्पादक
डॉ शाकिरा खानुम
डॉ शैलजा
डॉ सुलोचना एच.आई.

ಬೆಂಗಳೂರು ನಗರ ವಿಶ್ವವಿದ್ಯಾಲಯ
BENGALURU CITY UNIVERSITY
BE BOUNDLESS

KATHA SANKALP: Edited by Dr. Shakira Khanum, Dr. Shailaja & Dr. Sulochana. H.I,
Published by Prasarang Bangalore City University: Bengaluru-560001.
Pp. 106 + vii

© बेंगलूरु नगर विश्वविद्यालय
प्रथम संस्करण – 2022

प्रधान संपादक
प्रो. शेखर

मूल्य

और आग लगा दी। आग की ज्वालाएँ हवा में उठने लगीं, लोग पीछे हट गये, मगर सुलक्खी उसी जगह जलती हुई बेरी के पास चुपचाप खड़ी उसकी ओर देख रही थी।

सहसा वह चिता में कूद पड़ी। लोगों में हलचल मच गयी। वे हैं हैं कहते हुए आगे बए़, परन्तु आग की ज्वालाओं ने उनका रास्ता रोक लिया। सुलक्खी आग में बैठी जल रही थी, किन्तु उसके मुख पर जरा रोशनी, जरा घबराहट न थी, परन्तु आत्मिक प्रकाश था जैसे उसके लिए आग, आग न थी, ठण्डा जल था। इतने में ज्वालाओं में से आवाज आई – मैं मरते समय वसीयत करती हूँ कि मेरे कुल के लोग भविष्य में दान न लें।

पुरुषों की आँखों से आँसू जारी थे। स्त्रियाँ फूट–फूट कर रो रही थीं, परन्तु सुलक्खी मृत्यु के गुजरते हुए शोलों में चुपचाप बैठी थी। देखते–देखते माँ–बेटे दोनों जलकर भस्म हो गये। कल दोनों जिन्दा थे। आज कोई भी न था।

थोड़ी देर बाद सुलक्खी का भाई लछमन और गाँव के जाट लाठियाँ लिए हाड़ीराम को ढूंढते फिरते थे। वे कहते थे – आज उसको जिन्दा नहीं छोडेंगे। पहले मारेगे, फिर बाँध कर आग में जला देंगे।

परन्तु हाड़ीराम जंगलों और वनों में मुँह छिपाता फिरता था। इसके बाद उसे किसी ने नहीं देखा। कब मरा? कहाँ मरा? यह किसी को भी मालूम नहीं।

*****

और मध्य में बेरी कटी थी। लोग कहते थे कितना जालिम है, जरा–सी बात पर बेरी बाट दी। काटने पर ही सब्र किया होता तो भी खैर थी, अगले वर्ष फिर उस जाती, परन्तु इसने तो जड़ें भी उखाड़ दीं। आदमी काहै का है चंडाल है!

सहसा सुलक्खी छोटा–सा घूंघट निकाले आई और आंगन में खड़ी हो गई। उसने बेरी की डालों को जमीन पर पड़ा देखा, तो उसके हृदय पर छुरियाँ चल गयीं। उसको ऐसा प्रतीत हुआ जैसे ये वृक्ष की डालिाँ नहीं, उसकी संतान के हाथ–पाँव हैं। उसने आगे बढ़कर एक–एक डाली को गले लगाया और रो–रोकर विलाप किया। इस विलाप को सुनकर सभी रोने लगे। सुलक्खी कहती थी –अरे, तुने मुझे बुला क्यों न लिया? बच्चा! पता नहीं जब तुझ पर जालिम का कुल्हाड़ा चला होगा, तेरा दिल क्या कहता होगा? तड़पता होगा। सोचता होगा, माँ कहो को है, डाइन है। यह कसाई मेरे हाथ–पाँव काट रहा है, वह बाहर घूम रही है। बच्चा? मुझे क्या मालूम था तेरे सिर पर मौत खेल रही है। अभी भलाचंगा छोड़ गई थी, अभी–अभी तू बाँहे फैलाकर खड़ी था। तुझे देखकर जी प्रसन्न हो जाता था। इतनी जल्दी तैयारी कर ली। अब लोग तेरे बेरों को तरसेंगे। ऐसे मीठे बेर और यहाँ कहीं नहीं।

तेरे बाप ने मरते समय कहा था, जब तक जीती है इसकी रक्षा करना, और इसके बेर लोगों में बाँटना। आज ये दोनों बातें असंभव हो गई। अब मेरा रहना वृथा है। चल दोनों एक साथ चलें। वहाँ दोनों मिल कर रहेंगे।

यह कहकर उसने बेरी की डालियों की चिता सी चुनी। नीचे ऊपर सूखी लकड़ियाँ डाल कर उस पर घी डाला

भूमिका

बेंगलूरु नगर विश्वविद्यालय में 2021–22 शैक्षिक वर्ष से एन.ई.पी–2020 नियम (पद्धति) के अनुसार स्नातक वर्गों के लिए नया पाठ्यक्रम जारी किया जा रहा हैं।

इस पाठ्यक्रम की संरचना ऐसी की गई है कि इसके अध्ययन के पश्चात हिन्दी साहित्य के विद्यार्थी यह जान सके कि साहित्य का विश्लेषण और सराहना कैसे किया जाए और दिये गये पाठ को पढ़ने की समझ किस प्रकार विकसित की जाए, ताकि विद्यार्थी भाषा और साहित्य के उद्देश्य से भली–भाँति परिचित हो सके। जैसे विज्ञान और आदि विषयों के अध्ययन के साथ यह भी अधिक उपयोगी हैं। एन.ई.पी सेमिस्टर पद्धति के अनुसार पाठ्यक्रम निर्माण किया गया हैं।

इस पृष्ठभूमि में हिन्दी अध्ययन–मण्डल ने विभागाध्यक्ष डॉ. शेखर जी के मार्गदर्शन में पाठ्य–पुस्तक का निर्माण किया है।

विश्वास है कि यह कथा संकलन छात्र समुदाय के लिए अधिक उपयोगी सिद्ध होगा। विश्वविद्यालय की यह शुभेच्छा है कि साहित्य और समाज शास्त्रीय विषयों के लिए भी अधिक उपयोगी और प्रासंगिक लगे। इस पाठ्य पुस्तक के निर्माण में योग देने वाले सभी के प्रति विश्वविद्यालय आभारी है।

डॉ. लिंगराज गांधी
कुलपति
बेंगलूर नगर विश्वविद्यालय
बेंगलूरु–560001

प्रधान संपादक की बात .....

बेंगलूरू नगर विश्वविद्यालय शैक्षिक क्षेत्र में नये–नये विषयों को अपने अध्ययन की सीमा में ले रहा है। अध्ययन को नयी राष्ट्रीय शिक्षा नीति – 2020 के अनुसार प्रस्तुति करने का प्रयत्न हो रहा है। साहित्यिक विषयों को आज की बदलती परिस्थिति के अनुसार रखने के उद्देश्य से पाठ्यक्रम को प्रस्तुत किया जा रहा है।

एन.ई.पी सेमिस्टर पद्धति के अनुसार स्नातक वर्गों के लिए पाठ्यक्रम का निर्माण किया जा रहा है। इस पाठ्य पुस्तक के निर्माण में योग देने वाले सम्पादकों के प्रति मैं आभारी हूँ।

इस नयी पाठ्य पुस्तक के निर्माण में कुलपति महोदय डॉ. लिंगराज गांधी जी ने अत्यधिक प्रोत्साहन दिया, तदर्थ मैं उनके प्रति कृतज्ञ हूँ।

इस पाठ्यक्रम को नयी शिक्षा नीति ध्येयोद्देश्य को ध्यान में रखते हुए किया गया है। गद्य के विविध आयामों को इस पाठ्य पुस्तक में शामिल किया गया। आशा है कि सभी विद्यार्थीगण इससे अवश्य लाभान्वित होंगे।

डॉ. शेखर
अध्यक्ष (बी.ओ.एस.)
बेंगलूरु नगर विश्वविद्यालय
बेंगलूरु – 560001

हाड़ीराम – अच्छा, अब हम कौन हो गये?

सुलक्खी – (उस तरह गुस्से से) मेहनत मैं करती हूँ। रात–दिन मैं जागती हूँ, फिर सारे के सारे बेर बांट देती हूँ। आप एक बेर भी नहीं खाती। इस पर भी इतना क्रोध। आखिर आदमी को कुछ सोचना भी तो चाहिए। जाओं नहीं दिए नहीं सही। जो कुछ करना हो कर लो।

हाड़ीराम दाँत पीसता हुआ चला गया। सुलक्खी बेरी के पास जाकर उससे लिपट गयी, और बोली –बेटी! यदि तुम्हारा बाप जीता हो, तो इसकी क्या हिम्मत थी जो यूं मेरी बेइज्जती कर जाता।

इसके तीसरे दिन सुलक्खी एक बीमार लड़के की सेवा–सुश्रुषा कर रही थी कि एक लड़का दौड़ता हुआ आया, और हाँफता हुआ बोला –तुम्हारी बेरी को हाड़ी ने काट दिया। कई लोगों ने मना भी किया, मगर वह कहता था मुझे सुलक्खी ने गाली दी है। सारा आंगन भर गया है।

****

सुलक्खी को ऐसा मालूम हुआ, जैसे किसी ने गोली मार दी हो। वहाँ से चली, तो उसे रास्ता दिखायी न देता था। उसके पाँव तले से जमीन निकली जा रही थी। उस समय उसके शरीर में जरा भी शक्ति न थी। पैर इस तरह लड़खड़ा रहे थे, जैसे अभी गिर पड़ेगी। मार्ग के दोनों और लोग खड़े उसको देखते थे और हाड़ीराम को गालियाँ देते थे। उस समय उन्हें सुलक्खी का विचार था, हाड़ी का भय न था। वे सुलक्खी के साथ सहानुभूति दिखाना चाहते थे, और उन्हें सिवा हाड़ी को गालियाँ देने के और कोई न दिखाई देता था।

उधर सुलक्खी का आँगन स्त्री–पुरुषों से भरा था

हाड़ीराम ने जरा गर्म होकर कहा – वाह खत्म कैसे हो गये? हमें तो मिले ही नहीं।

सुलक्खी – तब तुम जाने कहाँ चले गये थे। दो बार तुम्हारे मकान पर ले गई, दोनों बार दरवाजा बन्द था। लौट आई। उसके बाद मुझे ख्याल नहीं रहा।

हाड़ीराम (त्यौरियाँ चढ़ाकर) – ख्याल क्यों नहीं रहा? इतनी बच्ची तो नहीं हो?

सुलक्खी (शांति से) – अब जजमान, तुमसे बहस कौन करे, भूल हो गई। अगले साल दुगने ले लेना।

हाड़ीराम – खाना तो कभी नहीं भूलती हो, न फसल पर गल्ला मांगना भूलती हो। हमारे बेरों का समय आया तो भूल गई।

सुलक्खी – तुम बाहर चले गये थे क्या करती?

हाड़ीराम – बेरी से लगे रहने देती। मैं आता, उतार लेता।

सुलक्खी – और जो पक कर गिर जाते, तो फिर! अब किसी के मुँह में तो पड़ गये। उस अवस्था में किसी के भी काम न आते।

हाड़ीराम के नेत्रों से अग्नि की ज्वाला निकलने लगी। गरजकार बोला मेरे बेर जब कान आएं तो मुझे क्या? चाहे रहें, चाहे मिट्टी में जाएं। मेरे लिए एक–सी बात है। तुम दूसरों को देने वाली कौन थीं।

अब सुलक्खी को भी क्रोध आया। जरा तेज होकर बोली – बेरी मेरी है, तुम्हारी नहीं। जिसको चाहूं एक बेर भी न दूँ, जिसका चाहूँ सबके सब दे दूँ। बेरी तुम्हारे हाथों की बिकी हुई नहीं। तुम बोलने वाले हो कौन?

अनुक्रमणिका

01.	परमात्मा का कुत्ता मोहन राकेश	01
02.	दही वाली मंगम्मा (कन्नड़ कहानी) अनुवादक : मास्ति वेंकटेश अय्यंगार ''श्रीनिवास''	14
03.	गौरी सुभद्रा कुमारी चौहान	32
04.	फैसला मैत्रेयी पुष्पा	48
05.	जवांमर्दी (उर्दू कहानी) अनुवादक : महमूद जाफर	56
06.	पोस्टमास्टर रबीन्द्रनाथ ठाकुर	66
07.	मैं नरक से बोल रहा हूँ हरिशंकर परसाई	77
08.	प्रेम तरु सुदर्शन	85

आख्यान न सुना था, जिसके पास खाने को कुछ न था, जो अपने जजमानों के दान पर निर्वाह करती थी, परन्तु उसका हृदय कितना विशाल, कितना पवित्र था। उसने पड़ोसियों के कर्त्तव्य को किस कदर समझा था। ऐसी पवित्र हृदय, सुशील सम्य देवियां संसार में कब जन्म लेती हैं।

******

कई वर्ष बीत गये।

ज्येष्ठ का महीना था। सुलक्खी बेरी के सारे बेर बाँट चुकी थी। अब बेरी पर एक भी बेर न था। सुलक्खी बेरी के पास खड़ी उसकी फलों से खाली डालों को देखती थी, और खुश होती थी कि इस साल का कर्त्तव्य भी पूरा हो गया। इतने में उसके एक जजमान हाड़ीराम ने आकर सुलक्खी का नमस्कार किया और बोला – पंडितानीजी! हमारे बेर कहाँ हैं?

सुलक्खी के सिर पर जैसे बिजली–सी गिर पड़ी। हैरान थी, क्या कहे क्या न कहे। हाड़ीराम गाँव में सबसे उज्जड्ड जाट था, जरा–जरा सी बात पर जोश में आ जाता था, और मरने–मारने को तैयार हो जाता था। उसकी लाल आँखें देखकर सारा गाँव सहज जाता था। वह अपने परिवार सहित दो महीने से बाहर गया था। सुलक्खी एक–दो बार उसके मकान पर गई और किवाड़ बन्द पाकर लौट आयी। इसके बाद वह उसे भूल सी गई, और बेर समाप्त हो गये। और अब ....

हाड़ीराम उसके सामने खड़ा था। सुलक्खी ने उसकी ओर खताबार निगाहों देखा और कहा जजमान! बेर तो खत्म हो गये।

बेर तुमने कहीं और भी देखें है? एक–एक बेर एक–एक आने को सस्ता है।

दुकानदार – यह ठीक सही, किन्तु है आखिर बेरी।

सुलक्खी – नहीं भैया! यह बेरी नहीं है। मेरे स्वामी की यादगार है। जो अपने स्वामी की यादगार को बेच दे उसको मरकर नरक भी न मिलेगा।

दुकानदार – अब इसका क्या उत्तर दूँ? पाँच सौ रुपए थोड़े नहीं होते। तेरी सारी आयु सुख से कट जायेगी।

सुलक्खी – भैया! जो सुख मुझे इसे पानी देकर होता है, वह सुख रुपये लेकर न होगा।

दुकानदार – तो पानी देने से तुझे कौन रोकता है? जितना चाहे पानी दे, अगर तेरा हाथ पकड़ जाऊँ, तो जो चोर की सजा वह मेरी सजा।

सुलक्खी – परन्तु जो बात अब है वह फिर कहाँ? अब अपना है, फिर पराया हो जायेगा। अब बेर सारे गाँव में बाँटती हूँ, फिर तू हाथ भी न लगाने देगा। गाँव के जिन लोगों के पास पैसे नहीं, वे क्या करेंगे? बेरों को देखेंगे और ठंडी सांस भरकर रह जायेंगे। मुझे कोसेंगे, दिल से गालियाँ देंगे। अब सबको मुफ्त मिलते हैं, फिर किसी को न मिलेंगे। गाँव के छोटे छोटे बच्चे कहेंगे, कैसी जालिम है, चार पैसे की खातिर बेरी बेच दी। न भाइ, यह कलंक का टीका न खरीदूंगी। मैं तो गरीब ही भली।

यह कहकर सुलक्खी बेरी के पास चली गई और उसकी डालियों पर हाथ फैरने लगी।

और यह उस स्त्री का हाल था, जिसने किसी पाठशाला में विद्या नहीं पढ़ी थी, जिसने कर्म–धर्म पर कोई

परमात्मा का कुत्ता

मोहन राकेश

लेखक परिचय

मोहन राकेश का जन्म 8 जनवरी 1925 को अमृतसर में हुआ था। उन्होंने हिंदी और अंग्रेजी में अपनी स्नातकोत्तर की डिग्री पंजाब विश्वविद्यालय से प्राप्त की थी।

मोहन राकेश एक प्रमुख कथाकार थे और हिंदी भाषा पर उनका उत्कृष्ट नियंत्रण था। उन्होंने ज्यादातर शहरी मध्यवर्गीय लोगों की आशाओं और आकांक्षाओं के बारे में लिखा। मोहन राकेश ने अपनी जीविका चलाने के लिए शिक्षण कार्य किया। कुछ साल तक वह 'सारिका' के संपादक भी रहे थे। उपन्यास शैली में– अंधेरे बंद कमरे, अन्तराल, ना होने वाला कल आदि, कुछ प्रमुख कहानी संग्रह में– क्वार्टर तथा अन्य कहानियाँ, पहचान तथा अन्य कहानियाँ, वारिस तथा अन्य कहानियाँ आदि, प्रमुख नाटकों में– आषाढ़ का एक दिन, लहरों के राजहंस और आधे अधूरे आदि मोहन राकेश की कुछ प्रमुख कृतियाँ है। मोहन राकेश के तीन नाटक आषाढ़ का एक दिन, लहरों के राजहंस और आधे अधूरे बहुत ही प्रसिद्ध हुये हैं, जिन्होंने थिएटर की दुनिया में एक उत्साह पैदा कर दिया है। उनके नाटक उस समय के निर्देशकों की पहली पसंद थे।

आधे अधूरे शीर्षक का नाटक मध्यम वर्ग के लोगों के जीवन पर आधारित एक दुखद कॉमेडी है। उन्होंने

मृच्छकटिका और शाकुंतलम का अनुवाद भी किया था।

मोहन राकेश को संगीत नाटक अकादमी द्वारा सम्मानित किया गया था।

हिंदी के महान लेखक मोहन राकेश 3 जनवरी 1972 को नई दिल्ली में इस संसार को छोड़कर चले गये।

*****

परमात्मा का कुत्ता

बहुत–से लोग यहाँ–वहाँ सिर लटकाए बैठे थे जैसे किसी का मातम करने आए हों। कुछ लोग अपनी पोटलियां खोलकर खाना खा रहे थे। दो–एक व्यक्ति पगड़ियां सिर के नीचे रखकर कम्पाउंड के बाहर सड़क के किनारे बिखर गए थे। छोले–कुलचे वाले का रोज़गार गरम था, और कमेटी के नल के पास एक छोटा– मोटा क्यू लगा था। नल के पास कुर्सी डालकर बैठा अर्ज़ीनवीस धड़ाधड़ अर्ज़ियां टाइप कर रहा था। उसके माथे से बहकर पसीना उसके होंठों पर आ रहा था, लेकिन उसे पोंछने की फ़ुरसत नहीं थी। सफ़ेद दाढ़ियों वाले दो–तीन लम्बे–ऊंचे जाट, अपनी लाठियों पर झुके हुए, उसके ख़ाली होने का इन्तज़ार कर रहे थे। धूप से बचने के लिए अर्ज़ीनवीस ने जो टाट का परदा लगा रखा था, वह हवा से उड़ा जा रहा था। थोड़ी दूर मोढ़े पर बैठा उसका लड़का अंग्रेज़ी प्राइमर को रट्टा लगा रहा था–सी ए टी कैट–कैट माने बिल्ली; बी ए टी बैट–बैट माने बल्ला; एफ़ ए टी फ़ैट–फ़ैट माने मोटा।। कमीज़ों के आधे बटन खोले और बगल में फ़ाइलें दबाए कुछ बाबू एक–दूसरे से छेड़खानी

चाही, पर सुलक्खी ने साफ इनकार कर दिया। कहा – दो सौ रुपये ले, बेरी दे दे।

सुलक्खी ने उत्तर दिया – तू दो हजार दे, जब भी न बेचूं। दो लाा दे जब भी न बेचूं।

दुकानदार – तू अजब स्त्री है। न खाती है न बेचती है।

सुलक्खी – बांटती तो हूँ। मेरे लिए यही खुशी की बात है। मैं नहीं खाती तो क्या हुआ, सारा गाँव तो खाता है।

दुकानदार – परन्तु इससे तुझे क्या मिल जाता है? जिसका बेर खाने की इच्छा होगी, पैसे देकर खरीद लेगा।

सुलक्खी ने दुकानदार की ओर करुणाापूर्ण दृष्टि से देखा, और कहा – मैं ब्राह्मणी हूँ, कुजडिन नहीं, जो अपनी बेरी के बेर बेचूं। न भाई यह न होगा। तू अपने रुपये ले जा, मुझे यह सौदा मंजूर नहीं।

एक दूसरे दुकानदार ने कहा – तू बेरी बेच दे तो मैं पाँच सौ रुपए दूं। बोल है इरादा?

सुलक्खी – यह बेरी नही है, हमारी औलाद है। अपनी औलाद कौन बेचता है?

दुकानदार – यह तेरा वहम है। आदमी की सन्तान आदमी होती है, वृक्ष नहीं होता।

सुलक्खी – यह अपना–अपना विचार है। कोई आदमी ऐसे भी हैं जो ठाकुर को पत्थर कहते हैं।

दुकानदार – मुझे तो वृक्ष ही मालूम होता है।

सुलक्खी – तेरी आँखों में वह ज्योति कहां जो इसकी असली सूरत देख सके? वृक्षों के बेर ऐसे मीठे कहाँ होते हैं।

लछमन अब तक चुप था, यह सुनकर बोला ऐसे मीठे

की तीमारदारी कर रही हो। जय वह स्वस्थ हो जाता, तब घर लौटती। उनकी इन सेवाओं से गाँव वालों के मन मोह लिये। वे कहते थे – यह स्त्री नहिं देवी है। अब उन्हें मालूम होता था कि यदि यह न हो तो गाँव वालों पर विपत्ति टूट पड़े। उसे दुनिया की किसी वस्तु से प्रेम न था – किसी वस्तु की परवाह न थी, जैसे उसने संयास ले लिया हो, जैसे उसने दुनिलया की हर वस्तु का परित्याग कर दिया हो।

परन्तु एक वस्तु से उसे अब भी प्यार था। वह उसकी बेरी थी। वह अब भी उसका उसी तरह ख्याल रखती थी, उसको उसी तरह पानी देती थी, उसी तरह देखभाल करती थी, गरमी में उसके पत्तों को कुम्हलाया हुआ देख कर अब भी उसी तरह अधीर हो जाती थी, रात को चौंक–चौंक कर अब अभी उसे देखती थी। बाहर जाती तो भाई लछमन को कह जाती – बेरी का ख्याल रखना, जब बेर लगते तो दो तीन महीने उसके पास से न उठती कहीं ऐसा न हो, जानवर आकर कुतर जाएं। जब बेर उतरते, तो सारे गांव में बांटती, जिस तरह पहले बांटे थे, मगर आप बेर को मुह न लगाती थी। न पहले साल खाये थे न अब खाती थी। उसका लछमन खूब पेट भर खाता था। वह कहता था, ये बेर इस दुनिया के नहीं, स्वर्गपुरी के हैं। कभी–कभी कहता, ऐसे बेर स्वर्ग में भी न होंगे। बहन से कहता है तू भी चखकर देख। वह कहती वह खाते तो मैं भी खाती। उन्होंने नहीं खाये, मैं भी नहीं खाऊँगी।

लछमन कहता है – तु अभागी है।

सुलक्खी उत्तर देती – अभागी न होती तो वह क्यों मरते? अब सारी आयु इसी प्रकार गुजर जायेगी।

गुरदासपुर के कई दुकानदारों ने बेरी मोल लेनी

करते, रजिस्ट्रेशन ब्रांच से रिकार्ड ब्रांच की तरफ़ जा रहे थे। लाल बेल्ट वाला चपरासी, आस–पास की भीड़ से उदासीन, अपने स्टूल पर बैठा मन ही मन कुछ हिसाब कर रहा था। कभी उसके होंठ हिलते थे, और कभी सिर हिल जाता था। सारे कम्पाउंड में सितम्बर की खुली धूप फैली थी। चिड़ियों के कुछ बच्चे डालों से कूदने और फिर ऊपर को उड़ने का अभ्यास कर रहे थे और कई बड़े– बड़े कौए पोर्च के एक सिरे से दूसरे सिरे तक चहलक़दमी कर रहे थे। एक सत्तर–पचहत्तर की बुढ़िया, जिसका सिर कांप रहा था और चेहरा झुर्रियों के गुंझल के सिवा कुछ नहीं था, लोगों से पूछ रही थी कि वह अपने लड़के के मरने के बाद उसके नाम एलाट हुई ज़मीन की हकदार हो जाती है या नहीं।। अन्दर हॉल कमरे में फ़ाइलें धीरे–धीरे चल रही थीं। दो–चार बाबू बीच की मेज़ के पास जमा होकर चाय पी रहे थे। उनमें से एक दफ़्तरी कागज़ पर लिखी अपनी ताज़ा ग़ज़ल दोस्तों को सुना रहा था और दोस्त इस विश्वास के साथ सुन रहे थे कि वह ग़ज़ल उसने 'शमा' या 'बीसवीं सदी' के किसी पुराने अंक में से उड़ाई है।

'अज़ीज़ साहब, ये शेअर आपने आज ही कहे हैं, या पहले के कहे हुए शेअर आज अचानक याद हो आए हैं?' सांवले चेहरे और घनी मूंछों वाले एक बाबू ने बायीं आंख को ज़रा–सा दबाकर पूछा। आस–पास खड़े सब लोगों के चेहरे खिल गए।

'यह बिल्कुल ताज़ा ग़ज़ल है,' अज़ीज़ साहब ने अदालत में खड़े होकर हलफ़िया बयान देने के लहज़े में कहा, 'इससे पहले भी इसी वज़न पर कोई और चीज़ कही हो तो

याद नहीं।' और फिर आंखों से सबके चेहरों को टटोलते हुए वे हल्की हंसी के साथ बोले, 'अपना दीवान तो कोई रिसर्चदां ही मुरत्तब करेगा।।'

एक फ़रमायशी कहकहा लगा जिसे 'शी–शी' की आवाज़ों ने बीच में ही दबा दिया। कहकहे पर लगाई गई इस ब्रेक का मतलब था कि कमिश्नर साहब अपने कमरे में तशरीफ़ ले आए हैं। कुछ देर का वक्फा रहा, जिसमें सुरजीत सिंह वल्द गुरमीत सिंह की फ़ाइल एक मेज़ से ऐक्शन के लिए दूसरी मेज़ पर पहुंच गई, सुरजीत सिंह वल्द गुरमीत सिंह मुसकराता हुआ हॉल से बाहर चला गया, और जिस बाबू की मेज़ से फ़ाइल गई थी, वह पांच रुपये के नोट को सहलाता हुआ चाय पीने वालों के जमघट में आ शामिल हुआ।

अज़ीज़ साहब अब आवाज़ ज़रा धीमी करके ग़ज़ल का अगला शेर सुनाने लगे।

साहब के कमरे से घंटी हुई। चपरासी मुस्तैदी से उठकर अन्दर गया, और उसी मुस्तैदी से वापस आकर फिर अपने स्टूल पर बैठ गया।

चपरासी से खिड़की का पर्दा ठीक कराकर कमिश्नर साहब ने मेज़ पर रखे ढेर–से काग़ज़ों पर एक साथ दस्तख़त किए और पाइप सुलगाकर 'रीडर्ज़ डाइजेस्ट' का ताज़ा अंक बैग से निकाल लिया। लेटीशिया बाल्ड्रिज का लेख कि उसे इतालवी मर्दों से क्यों प्यार है, वे पढ़ चुके थे। और लेखों में हृदय की शल्य चिकित्सा के सम्बन्ध में जे.डी. रैटक्लिफ़ का लेख उन्होंने सबसे पहले पढ़ने के लिए चुन रखा था। पृष्ठ एक सौ ग्यारह खोलकर वे हृदय के नए ऑपरेशन का ब्यौरा पढ़ने लगे। तभी बाहर से कुछ शोर सुनाई देने लगा।

गया, गाँव में जैसा इलाज हो सकता था हुआ। हकीम ने समझाा, थकावट का बुखार है, साधारण औषधियों से उतर जाएगा परन्तु वह थकावट का बुखार न था। वह मृत्यु का बुखार था, जिसकी दवा दुनिया के बड़े–से–बड़े हकीम के पास भी नहीं थी। चौथे दिन प्रातः ही जयचन्द सुलक्खी से घण्टा भर धीरे–धीरे बातें करते रहे, रोते और रूलाते रहे, दुनियादारी की बात समझाते रहे। ये बातें उनके जीवन का सार थीं। सुलक्खी ये बातें सुनती थीं और रोती जाती थी। इस समय उसका दिल बस में न था। वह चाहती थी, जिस तरह हो, पति को बचा ले। यदि उसके वश में होता, तो यह अपनी जानदेकर भी उन्हें बचा लेती। इससे उसे जरा भी संकोच न हो। परन्तु जो भाग्य में बदा हो, उसे कौन सकता है। थोड़ी देर बाद इधर संसार का सूर्य उदय हो रहा था, उधर जयचन्द के जीवन और सुलक्खी की दुनिलया का सूर्य हमेशा के लिए अस्त हो गया।

अब सुलक्खी संसार में बिलकुल अकेली थी। अब उसका सिवा एक छोटे भाई के और कोई न था। थोड़े दिन रोती रही। इसके बाद चुप हो गई इसलिए नहीं कि मृत्यु का शोक भूल गई, बल्कि इसीलिए कि उनकी आँखों में आँसू न रहे थे। रो–रोकर आँसू भी समाप्त हो जाते हैं। मगर उसके दिल के घाव हमेशा रहे थे। उसे किसी पहलू कल न पड़ती थी, पति की मृत्यु के बाद किसी ने उसे हँसेते न देखा। न अच्छा खाती थी, न अच्छा पहनती थी। उसका अधिक समय दुखी लोगों की सेवा में गुजरता था। गाँव में कोई बीमार होता, सुलक्खी पहुंच जाती फिर उसे सोना हराम था सिरहाने से न उठती थी। हर समय सेवा में लगी रहती थी। जैसे माँ बच्चों

मीठे हैं, अभी तक मुंळ से सुगन्ध आ रही है।

यह कहकर जजमान चला गया। इतने में दो और आ गये। पंडित जी के पास चार बेर बाकी थे। उनकी भेंट हो गये। और उनके पास एक भी बेर न था। पण्डित जी दिल में डरे, सुलक्खी से क्या कहूंगा? कहीं खफा न हो जाये, तैश में न आ जाय। परन्तु सुलक्खी इस प्रकार की औरत न थी। सारा माजरा सुनकर बोली – आपने बहुत अच्छा किया। हमारा क्या है? फिर खा लेंगे। अपनी बेरी है, जब चाहा दो बेर तोड़ लिए। कहीं मांगने थोड़े जाना है। और क्या?

जयचन्द – गाँव में धूम मच गई है। कहते हैं ऐसे बेर दूर–दूर तक नहीं हैं।

सुलक्खी की आँखों में से आँसू आ गये। नथ को संभालते हुए बोली सभी कहते हैं – और दो। बेर क्या हैं खोए के पेड़े हैं।

जयचन्द– कहते हैं इनमें सुगन्ध भी है।

सुलक्खी – जो खाता है, चटखारे लेता है ऐसा मजा न आम में है न संतरे में।

जयचन्द – यह सब तुम्हारे परिश्रम का फल है। रोज पानी दिया करती थीं। तुम्हारे हाथों का पानी अमृत हो गया।

सुलक्खी – और जो तुम कपड़ों से छाया करते फिरते थे, उसका कोई असर ही नहीं है? यह बस उसका नतीजा है।

जयचन्द – तुम देर से लौटीं नहीं तो एक–एक खा लेते। अब दो–चार दिन के बाद पकेंगे।

परन्तु जयचन्द के भाग्य में बेर का पकाना लिखा था बेर खाना नहीं था। रतजगे के बाद उनको सहसा बुखार हो

कम्पाउंड में पेड़ के नीचे बिखरकर बैठे लोगों में चार नए चेहरे आ शामिल हुए थे। एक अधेड़ आदमी था जिसने अपनी पगड़ी ज़मीन पर बिछा ली थी और हाथ पीछे करके तथा टांगें फैलाकर उस पर बैठ गया था।

पगड़ी के सिरे की तरफ़ उससे ज़रा बड़ी उम्र की एक स्त्री और एक जवान लड़की बैठी थीं; और उनके पास खड़ा एक दुबला–सा लड़का आस–पास की हर चीज़ को घूरती नज़र से देख रहा था, अधेड़ मरद की फैली हुई टांगें धीरे–धीरे पूरी खुल गई थीं और आवाज़ इतनी ऊंची हो गई थी कि कम्पाउंड के बाहर से भी बहुत– से लोगों का ध्यान उसकी तरफ़ खिंच गया था। वह बोलता हुआ साथ अपने घुटने पर हाथ मार रहा था। 'सरकार वक्त ले रही है! दस–पांच साल में सरकार फ़ैसला करेगी कि अर्ज़ी मंजूर होनी चाहिए या नहीं। सालो, यमराज भी तो हमारा वक्त गिन रहा है। उधर वह वक्त पूरा होगा और इधर तुमसे पता चलेगा कि हमारी अर्ज़ी मंज़ूर हो गई है।'

चपरासी की टांगें ज़मीन पर पुख्ता हो गईं, और वह सीधा खड़ा हो गया। कम्पाउंड में बिखरकर बैठे और लेटे हुए लोग अपनी–अपनी जगह पर कस गए। कई लोग उस पेड़ के पास आ जमा हुए। 'दो साल से अर्ज़ी दे रखी है कि सालो, ज़मीन के नाम पर तुमने मुझे जो गड्ढा एलाट कर दिया है, उसकी जगह कोई दूसरी ज़मीन दो। मगर दो साल से अर्ज़ी यहाँ के दो कमरे ही पार नहीं कर पाई!' वह आदमी अब जैसे एक मजमे में बैठकर तक़रीर करने लगा,'इस कमरे से उस कमरे में अर्ज़ी के जाने में वक्त लगता है!

इस मेज़ से उस मेज़ तक जाने में भी वक्त लगता है!

सरकार वक्त ले रही है! लो, मैं आ गया हूं आज यहीं पर अपना सारा घर–बार लेकर। ले लो जितना वक्त तुम्हें लेना है! ...सात साल की भुखमरी के बाद सालों ने ज़मीन दी है मुझे–सौ मरले का गड्ढा! उसमें क्या मैं बाप–दादों की अस्थियां गाड़ूंगा? अर्ज़ी दी थी कि मुझे सौ मरले की जगह पचास मरले दे दी–लेकिन ज़मीन तो दो! मगर अर्ज़ी दो साल से वक्त ले रही है! मैं भूखा मर रहा हूं, और अर्ज़ी वक्त ले रही है!' चपरासी अपने हथियार लिये हुए आगे आया–माथे पर त्योरियां और आंखों में क्रोध। आस–पास की भीड़ को हटाता हुआ वह उसके पास आ गया।

'ए मिस्टर, चल हियां से बाहर!' उसने हथियारों की पूरी चोट के साथ कहा, 'चल... उठ...'

'मिस्टर आज यहां से नहीं उठ सकता!' वह आदमी अपनी टांगें थोड़ी और चौड़ी करके बोला, 'मिस्टर आज यहां का बादशाह है। पहले मिस्टर देश के बेताज बादशाहों की जय बुलाता था। अब वह किसी की जय नहीं बुलाता। अब वह ख़ुद यहां का बादशाह है... बेलाज बादशाह! उसे कोई लाज–शरम नहीं है। उस पर किसी का हुक्म नहीं चलता। समझे, चपरासी बादशाह!'

'अभी तुझे पता चल जाएगा कि तुझ पर किसी का हुक्म चलता है या नहीं, 'चपरासी बादशाह और गरम हुआ, 'अभी पुलिस के सुपुर्द कर दिया जाएगा तो तेरी सारी बादशाही निकल जाएगी...'

'हा–हा!' बेलाज बादशाह हंसा। 'तेरी पुलिस मेरी बादशाही निकालेगी? तू बुला पुलिस को। मैं पुलिस के सामने नंगा हो जाऊंगा और कहूंगा कि निकालो मेरी बादशाही! हममें

जयचन्द : जजमानों को भेंट कर लूं, फिर खाऊंगा।

जजमान – हैरान रह जाओगे? ऐसे बेर काबुल–कंधार में भि न होंगे। हमारे घर में दस–बीस बेरों से क्या बनता है? देखते–देखते खतम हो गए। और बेर कब उतरेंगे? हम बीस और लेंगे।

जयचन्द – आपका अपना वृक्ष है, दो–चार दिन में और उतरेंगे तो भिजवा दूंगा। मुझे दूसरों को खिलाकर जो प्रसन्नता प्राप्त होती है, वह आप खाकर नहीं होती। लीजिए दो और ले जाइये। छः बाकी हैं। हम दोनों तीन–तीन खायेंगे, हमें यह बहुत हैं।

थोड़ी देर बाद एक और जजमान आया। उसने भी इतनी तारीफ की कि जयचन्द की आंखें चमकने लगीं बोले – यह प्रेम का वृक्ष है इसमें प्रेम के बेर लगे हैं। इनमें मीठे संसार भर में न होंगे। भाई, इतनी मेहनत कौन करता है? आप दोनों ने एक मिसाल कायम कर दी। दो बेर खाये हैं, दो और मिल जायें तो मजा आ जाय। फालतू हैं, या नहीं?

जयचन्द ने मुस्कराकर कहा – छः बचे हैं। दो आप ले जाइये। दो–दो हम खा लेंगेञ।

जजमान : यह तो अन्या होगा। रहने दीजिए। फिर सही। और बेर कब तक उतरेंगे?

जयचन्द – आप ले जावें। हमें स्वाद देखना है, पेट थोड़े भरना है? (बेर हाथ पर रखते हुए) रात रतजगा है, आइयेगा न? कोई बेटों का ब्याह करता है, कोई पोती–पोते का मुंडन करता है। मेरी आयु में यही एक दिन आय है। यही अन्तिम होगा और क्या?

जजमान – जरूर आऊँगा पंडित जी? मगर बेर खूब

देखने की क्या आवश्यकता है।

जयचन्द – वाह! आवश्यकता क्यों नही है? एक साथ खाएंगे, अकेले में क्या मजा आएगा? जरा जल्दी लौट आना, नहीं लड़ाई होगी।

सुलक्खी छोटा–सा घूंघट निकाल, और बेरों की टोकरी उठाकर बांटने चली, जैसे कोई ब्याह–शादी की मिठाई बांटने जा रही हो! थोड़ी देर में एक जजमान दौड़ता हुआ आया और बोला पण्डित जी! बधई हो! बेर खूब मीठे निकले।

जयचन्द का दिल धड़कने लगा। मुंह गुलाबी हो गया। बोला – अच्छा, आपने खाये हैं?

जजमान – खाये क्या हैं? बेर चखा हे, मगर वह भाई वाह, गुड़ से भी मीठा है। आम से भी मीठा। कोई और बेर हैं या नहीं?

जयचन्द की बाछें खिल गई। उन्होंने दो बेर उठाकर जजमान के हाथ में दे दिये। जजमान खाता था और तारीफ करता जाता था। कहता था – पंडितजी ये बेर क्या हैं, खांड के खिलौने हैं। मेरी इतनी आयु हो गई, मगर ऐसे बेर मैंने आज तक नहीं खाये। परमात्मा जाने इनमें कैसा स्वाद है, मालूम होता है जैसे कोई खुशबू भरी है, जैसे किसी ने इत्र भर दिया है।

जयचन्द – परमात्मा ने हमारी मेहनत सफल कर दी है।

जजमान – सारे इलाके में ऐसे बेर मिल जाय तो मूंछें मुडवा दूं। दूर–नजदीक से लोग आया करेंगे। मालूम होता है, आपने अभी तक नहीं चखे?

से किस–किसकी बादशाही निकालेगी पुलिस? ये मेरे साथ तीन बादशाह और हैं। यह मेरे भाई की बेवा है–उस भाई की जिसे पाकिस्तान में टांगों से पकड़कर चीर दिया गया था। यह मेरे भाई का लड़का है जो अभी से तपेदिक का मरीज़ है। और यह मेरे भाई की लड़की है जो अब ब्याहने लायक हो गई है। इसकी बड़ी कुंवारी बहन आज भी पाकिस्तान में है। आज मैंने इन सबको बादशाही दे दी है। तू ले आ जाकर अपनी पुलिस, कि आकर इन सबकी बादशाही निकाल दे। कुत्ता साला...!'

अन्दर से कई–एक बाबू निकलकर बाहर आ गए थे। 'कुत्ता साला' सुनकर चपरासी आपे से बाहर हो गया।

वह तैश में उसे बांह से पकड़कर घसीटने लगा, 'तुझे अभी पता चल जाता है कि कौन साला कुत्ता है! मैं तुझे मार–मारकर...' और उसने उसे अपने टूटे हुए बूट की एक ठोकर दी। स्त्री और लडकी सहमकर वहां से हट गईं। लड़का एक तरफ़ खड़ा होकर रोने लगा।

बाबू लोग भीड़ को हटाते हुए आगे बढ़ आए और उन्होंने चपरासी को उस आदमी के पास से हटा लिया। चपरासी फिर भी बड़बड़ाता रहा, 'कमीना आदमी, दफ़्तर में आकर गाली देता है। मैं अभी तुझे दिखा देता कि...'

'एक तुम्हीं नहीं, यहां तुम सबके–सब कुत्ते हो,' वह आदमी कहता रहा, 'तुम सब भी कुत्ते हो, और मैं भी कुत्ता हूं। फर्क सिर्फ इतना है कि तुम लोग सरकार के कुत्ते हो–हम लोगों की हड्डियां चूसते हो और सरकार की तरफ़ से भौंकते हो। मैं परमात्मा का कुत्ता हूं। उसकी दी हुई हवा खाकर जीता हूं, और उसकी तरफ़ से भौंकता हूं। उसका घर इन्साफ़ का

घर है। मैं उसके घर की रखवाली करता हूं। तुम सब उसके इन्साफ़ की दौलत के लुटेरे हो। तुम पर भौंकना मेरा फ़र्ज़ है, मेरे मालिक का फ़रमान है। मेरा तुमसे असली बैर है। कुत्ते का बैरी कुत्ता होता है। तुम मेरे दुश्मन हो, मैं तुम्हारा दुश्मन हूं। मैं अकेला हूं, इसलिए तुम सब मिलकर मुझे मारो। मुझे यहां से निकाल दो। लेकिन मैं फिर भी भौंकता रहूंगा। तुम मेरा भौंकना बन्द नहीं कर सकते। मेरे अन्दर मेरे मालिक का नर है, मेरे वाहगुरु का तेज़ है। मुझे जहां बन्द कर दोगे, मैं वहां भौंकूंगा, और भौंक– भौंककर तुम सबके कान फाड़ दूंगा। साले, आदमी के कुत्ते, जूठी हड्डी पर मरने वाले कुत्ते दुम हिला–हिलाकर जीने वाले कुत्ते...!'

'बाबा जी, बस करो,' एक बाबू हाथ जोड़कर बोला, 'हम लोगों पर रहम खाओ, और अपनी यह सन्तबानी बन्द करो। बताओ तुम्हारा नाम क्या है, तुम्हारा केस क्या है...?'

'मेरा नाम है बारह सौ छब्बीस बटा सात! मेरे मां–बाप का दिया हुआ नाम खा लिया कुत्तों ने। अब यही नाम है जो तुम्हारे दफ़्तर का दिया हुआ है। मैं बारह सौ छब्बीस बटा सात हूं। मेरा और कोई नाम नहीं है।

मेरा यह नाम याद कर लो। अपनी डायरी में लिख लो। वाहगुरु का कुत्ता–बारह सौ छब्बीस बटा सात।'

'बाबा जी, आज जाओ, कल या परसों आ जाना। तुम्हारी अर्ज़ी की कार्रवाई तक़रीबन–तक़रीबन पूरी हो चुकी है...'

'तक़रीबन–तक़रीबन पूरी हो चुकी है! और मैं खुद ही तक़रीबन–तक़रीबन पूरा हो चुका हूं! अब देखना यह है कि पहले कार्रवाई पूरी होती है, कि पहले मैं पूरा होता हूं! एक

लगतीं थी जैसे चांदनी रात में ज्वार आ जाय।

आखिर वह दिन भी आ गया, जिसकी पति–पत्नी दोनों प्रतीक्षा कर रहे थे। पहले दिन बेरी के दो सौ बेर उतरे। वे बेर इतने मोटे ऐसे गोल–गोल, ऐसे लाल, इतने सुन्दर और चिकने थे कि देखकर जी खुश हो जाता था। दोपहर का समय था। सुलक्खी ने पुराने जमाने की हिन्दु स्त्रियों की तरह नये कपड़े पहने, लाल रंग की फुलकारी ओढ़ी, नाम में नथ पहनी और जाकर जयचन्द के सामने खड़ी हो गई, जैसे उस दिन उसके यहां कोई ब्याह–शादी थी। उसको इन वस्त्रों में देखकर जयचन्द मुग्ध–सा हो गया। थोड़ी देर तक दोनों के मुंह से कोई बात न निकली। आँखें मूंदकर चुपचाप इस अलौकिक आनन्द से आनन्दित होते रहे। तब जयचन्द ने बेर टोकरी में रखे और सुलक्खी से कहा – जा! जाकर जजमानों के यहाँ गिनकर बीस–बीस दे आ।

सुलक्खी ने साहसपूर्ण नेत्रों से पति की ओर देखा और प्यार भरी आवाज में कहा – ईश्वर करे खूब मीठे हां। लोग बे–आख्तियार वाह–वाह कहें।

आकर बधाइयां दें। कहें ऐसे बेर सारे गांव में नहीं हैं।

जयचन्द ने दस बेर अपने लिए रख लिए थे। उनकी ओर ताकते हुए बोले – तू ख्वामख्वाह मरी जाती है। दूसरों के लिए मीठे न होंगे न सही पर हमारे लिए इनसे मीठी वस्तु संसार में और कोई नहीं है। यह मैं चखे बिना कह सकता हूँ – जा! देर हुई जाती है, तू बाँटकर आ जाये तो एक साथ खाये।

सुलक्खी ने पति की ओर प्यार से देखकर उत्तर दिया – मैं एक–आध घर में दे लूं, तो तुम खा लेना। मेरी राह

पहले की तरह पूजा–पाठ के पाबन्द न रहे थे। सुलक्खी को अब चरखे का ख्याल न था। साधारण वृक्ष के प्रेम ने उन्हें इस प्रकार बांध दिया था कि जरा हिलते भी न थे। हर समय उसी की बातें करते थे। उस वक्त वह इस संसार से बाहर चले जाते थे। सुलक्खी कहती – तुम्हारे ख्याल में यह पीले रंग का बेर होगा, मगर मुझे तो ऐसा मालूम होता है कि मेरी बेटी ने सोने के आभूषण पहने हैं। किस शान से खड़ी है देखकर मन नाचने लगता है।

जयचन्द कहते यह मेरे बेटे की पहली कमाई है। इसे बेर कौन कहता है। यह तो मोहरे हैं, बल्कि मुझे तो इसके सामने मोहरें भी तुच्छ मालूम होती है उन्हें मनुष्य बनाता है। इसे स्व्यं भगवान अपने हाथों से संवारता है। इसके सामने मोहरें और अशर्फियां किस काम की? थोड़े दिनों में वह बेर बन जायेंगे। उनमें जो सुन्दरता जो यौवन, जो मिठास होगी, वह सोने के उन सिक्कों में कहाँ?

सुलक्खी कहती – जिस दिन पहले बेर उतरेंगे, उस दिन मिठाई बाटूंगी।

जयचन्द कहते – मैं रतजगा करूँगा, गाँव के सारे लोगों को बुलाऊंगा, सारी रात रौनक रहेगी।

सुलक्खी कहती – खूब खर्च करना पड़ेगा।

जयचन्द कहते – लोग बेटों की ब्याह शादी में लुटाते हैं। मेरे लिए यही बेटे का ब्याह है। सब बुछ खर्च हो जाय, जब भी परवाह नहीं परन्तु एक बार दिल के अरमान निकल जाये। कोई अभिलाषा शेष न रह जाय।

यह सुनकर सुलक्खी किसी दूसरी दुनिया में पहुंच जाती थी। उसके हृदयरूपी समुद्र में खुशी की तरंगे उठने

तरफ़ सरकार का हुनर है और दूसरी तरफ़ परमात्मा का हुनर है! तुम्हारा तक़रीबन–तक़रीबन अभी दफ़्तर में ही रहेगा और मेरा तक़रीबन–तक़रीबन कफ़न में पहुंच जाएगा। सालों ने सारी पढ़ाई ख़र्च करके दो लफ़्ज ईज़ाद किए हैं– शायद और तक़रीबन। 'शायद आपके काग़ज़ ऊपर चले गए हैं–तक़रीबन–तक़रीबन कार्रवाई पूरी हो चुकी है!' शायद से निकालो और तक़रीबन में डाल दो! तक़रीबन से निकालो और शायद में गर्क़ कर दो। तक़रीबन तीन–चार महीने में तहक़ीक़ात होगी...। शायद महीने–दो महीने में रिपोर्ट आएगी।' मैं आज शायद और तक़रीबन दोनों घर पर छोड़ आया हूं। मैं यहां बैठा हूं और यहीं बैठा रहूंगा। मेरा काम होना है, तो आज ही होगा और अभी होगा। तुम्हारे शायद और तक़रीबन के ग्राहक ये सब खड़े हैं। यह ठगी इनसे करो...।'

बाबू लोग अपनी सद्‌भावना के प्रभाव से निराश होकर एक–एक करके अन्दर लौटने लगे।

'बैठा है, बैठा रहने दो।'

'बकता है, बकने दो।'

'साला बदमाशी से काम निकालना चाहता है।'

'लेट हिम बार्क हिमसेल्फ़ टु डेथ।'

बाबुओं के साथ चपरासी भी बड़बड़ाता हुआ अपने स्टूल पर लौट गया। 'मैं साले के दांत तोड़ देता। अब बाबू लोग हाक़िम हैं और हाक़िमों का कहा मानना पड़ता है, वरना...'

'अरे बाबा, शान्ति से काम ले। यहां मिन्नत चलती है, पैसा चलता है, धौंस नहीं चलती,' भीड़ में से कोई उसे समझाने लगा। वह आदमी उठकर खड़ा हो गया।

'मगर परमात्मा का हुक्म हर जगह चलता है, 'वह अपनी कमीज़ उतारता हुआ बोला,' और परमात्मा के हुक्म से आज बेलाज बादशाह नंगा होकर कमिश्नर साहब के कमरे में जाएगा। आज वह नंगी पीठ पर साहब के डंडे खाएगा। आज वह बूटों की ठोकरें खाकर प्राण देगा। लेकिन वह किसी की मिन्नत नहीं करेगा। किसी को पैसा नहीं चढ़ाएगा। किसी की पूजा नहीं करेगा। जो वाहगुरु की पूजा करता है, वह और किसी की पूजा नहीं कर सकता। तो वाहगुरु का नाम लेकर...'

और इससे पहले कि वह अपने कहे को किए में परिणत करता, दो–एक आदमियों ने बढ़कर तहमद की गांठ पर रखे उसके हाथ को पकड़ लिया। बेलाज बादशाह अपना हाथ छुड़ाने के लिए संघर्ष करने लगा।

'मुझे जाकर पूछने दो कि क्या महात्मा गांधी ने इसीलिए इन्हें आज़ादी दिलाई थी कि ये आज़ादी के साथ इस तरह सम्भोग करें? उसकी मिट्टी ख़राब करें? उसके नाम पर कलंक लगाएं? उसे टके–टके की फ़ाइलों में बांधकर ज़लील करें? लोगों के दिलों में उसके लिए नफ़रत पैदा करें? इन्सान के तन पर कपड़े देखकर बात इन लोगों की समझ में नहीं आती। शरम तो उसे होती है जो इन्सान हो। मैं तो आप कहता हूं कि मैं इन्सान नहीं, कुत्ता हूं...!'

सहसा भीड़ में एक दहशत–सी फैल गई। कमिश्नर साहब अपने कमरे से बाहर निकल आये थे। वे माथे की त्योरियों और चेहरे की झुर्रियों को गहरा किए भीड़ के बीच में आ गए।

'क्या बात है? क्या चाहते हो तुम?'

भी परवाह न थी। उन्हें उस बेरी की कोपलें बढ़ती देखकर वैसे ही प्रसन्नता होती थी, जैसे माता–पिता को बच्चे के हाथ–पांव बढ़ते देखकर होती है। जयचन्द बाहर से आते तो सबसे पहले बेरी का कुशल–क्षेम पूछते। सुलक्खी रात को कई–कई बार चौंककर उठती और बेरी को देखने जाती शायद उसे भय था कि कोई इस अनमोल वस्तु को उखाड़कर न ले जाए। ऐसे प्रेम से ऐसी सावधानी से किसी गरीब विधवा ने अपने एकमात्र पुत्र का भी लालन पालन शादय ही किया होगा।

धीरे–धीरे यह प्रेम–तरू बढ़ने लगा। अब वह जमीन से बहुत ऊपर उठ गया था। उसका तना भी मोटा हो गया था। डालें भी बड़ी–बड़ी हो गई थीं। रात के समय ऐसा सन्देह होता था जैसे वह बाहें फैलाकर किसी से गले मिलने को अधीर हो रहा है। सुलक्खी उसे अपनी बेटा और जयचन्द उसे अपना बेटा कहते थे। उसे देखकर उनकी आँखें चमकने लगती थीं। उनका हृदय कमल खिल उठता था। वह वृक्ष साधारण वक्ष न था, उनके रात–दिन के परिश्रम का परिणाम था। इनके लिए उन्होंने अपनी रातों की नींद कुर्बान की थी। इस पर उन्होंने अपने–अपने शरीर और आत्मा की सम्पूर्ण शक्तियाँ खर्च कर दी थीं।

इसी तरह प्रेम–मुहब्बत और लाड़ प्यार के चार वर्ष गुजर गये, और बेरी के फलने के दिन नजदीक आ गये। जयचन्द सुलक्खी दोनों के पांव जमीन पर न पड़ते थे। उनकी खुशी का ठिकाना न था। जब बेर आया तो दोनों सारा–सारा दिन आंगन में बैठे उसकी रखा किया करते थे। क्या मजाल जो कोई पास भी फटक जाए। जयचन्द अब

जयचन्द – भाई, यह बात तो तुमने मेरे मुँह से छीन ली। मैं भी यही कहने जा रहा था। हाँ बेटा तो है ही। इसे खूब प्यार करोगी न?

सुलक्खी – तुम्हारे कहने की क्या आवश्यकता है? अपने बेटे से कौन प्यार नहीं करता?

जयचन्द – मैं डरता हूँ, कहीं मुझे न भूल जाओ। बड़ी आयु में बालक पाकर स्त्रियाँ पति को उपेक्षा की दृष्टि से देखने लगती हैं, मगर मुझसे तुम्हारी लापरवाही बर्दाश्त न होगी। यह अभी से कहे देता हूँ।

सुलक्खी – चलो हटो! तुम्हें अभी से डाह होने लगी।

जयचन्द हंसते–हंसते घर के भीतर चले गये, परन्तु सुलक्खी कई घंटे वहीं धूप में खड़ी बेरी की ओर देखती रही और खुश होती रही। आज भगवान ने उसका घर बूटा लगा दिया था। आज उसको ऐसा अनुभव हुआ जैसे वह बाँझ नहीं रही – पुत्रवती हो गई है। अबोध बालक छाछ को दूध समझकर खुश हो रहा था।

अब जयचन्द और सुलक्खी दोनों को एक काम मिल गया। कभी बेरी को पानी देते कि कुम्हला न जाय, कभी खुरपी लेकर उसके आसपास की जमीन खोदते कि उसे अपनी खुराक प्राप्त करने में दिक्कत न हो, कभी उसके इर्द–गिर्द बाड लगाये कि जीव–जन्तु हानि न पहुंचाये, कभी दो चारपाइयां खड़ी करके उस पर चादर फैला देते कि गरमी से सूख न जाये। लोग देखते थे और उनकी इस मूर्खता पर हँसते थे। कोई कोई कह भी देता था कि उनकी अकल मारी गई है, साधारण वृक्ष को पुत्र समझ बैठे हैं।

मगर प्रेम के इन सरल हृदय भक्तों को इसकी जरा

'आपसे मिलना चाहता हूं, साहब,' वह आदमी साहब को घूरता हुआ बोला, 'सौ मरले का एक गड्ढा मेरे नाम एलाट हुआ है। वह गड्ढा आपको वापस करना चाहता हूं ताकि सरकार उसमें एक तालाब बनवा दे, और अफ़सर लोग शाम को वहां जाकर मछलियां मारा करें। या उस गड्ढे में सरकार एक तहख़ाना बनवा दे और मेरे जैसे कुत्तों को उसमें बन्द कर दे...।'

'ज़्यादा बक–बक मत करो, और अपना केस लेकर मेरे पास आओ।'

'मेरा केस मेरे पास नहीं है, साहब! दो साल से सरकार के पास है–आपके पास है। मेरे पास अपना शरीर और दो कपड़े हैं। चार दिन बाद ये भी नहीं रहेंगे, इसलिए इन्हें भी आज ही उतारे दे रहा हूं। इसके बाद बाकी सिर्फ़ बारह सौ छब्बीस बटा सात रह जाएगा। बारह सौ छब्बीस बटा सात को मार–मारकर परमात्मा के हुज़ूर में भेज दिया जाएगा...।'

'यह बकवास बन्द करो ओर मेरे साथ अन्दर आओ।'

और कमिश्नर साहब अपने कमरे में वापस चले गए। वह आदमी भी कमीज़ कन्धे पर रखे उस कमरे की तरफ़ चल दिया।

'दो साल चक्कर लगाता रहा, किसी ने बात नहीं सुनी। ख़ुशामदें करता रहा, किसी ने बात नहीं सुनी। वास्ते देता रहा, किसी ने बात नहीं सुनी...।'

चपरासी ने उसके लिए चिक उठा दी और वह कमिश्नर साहब के कमरे में दाख़िल हो गया। घंटी बजी,

फ़ाइलें हिलीं, बाबुओं की बुलाहट हुई, और आधे घंटे के बाद बेलाज बादशाह मुस्कराता हुआ बाहर निकल आया। उत्सुक आंखों की भीड़ ने उसे आते देखा, तो वह फिर बोलने लगा, 'चूहों की तरह बिटर–बिटर देखने में कुछ नहीं होता। भौंको, भौंको, सबके–सब भौंको। अपने–आप सालों के कान फट जाएंगे। भौंको कुत्तो, भौंको...'

उसकी भौजाई दोनों बच्चों के साथ गेट के पास खड़ी इन्तज़ार कर रही थी। लड़के और लड़की के कन्धों पर हाथ रखते हुए वह सचमुच बादशाह की तरह सड़क पर चलने लगा।

'हयादार हो, तो सालहा–साल मुंह लटकाए खड़े रहो। अर्ज़ियां टाइप कराओ और नल का पानी पियो।

सरकार वक्त ले रही है! नहीं तो बेहया बनो। बेहयाई हज़ार बरकत है।'

वह सहसा रुका और ज़ोर से हंसा।

'यारो, बेहयाई हज़ार बरकत है।'

उसके चले जाने के बाद कम्पाउंड में और आस–पास मातमी वातावरण पहले से और गहरा हो गया। भीड़ धीरे–धीरे बिखरकर अपनी जगहों पर चली गई। चपरासी की टांगें फिर स्टूल पर झूलने लगीं। सामने के कैंटीन का लड़का बाबुओं के कमरे में एक सेट चाय ले गया। अर्ज़ीनवीस की मशीन चलने लगी और टिक–टिक की आवाज़ के साथ उसका लड़का फिर अपना सबक दोहराने लगा। 'पी ई एन पेन–पेन माने कलम; एच ई एन हेन–हेन माने मुर्गी; डी ई ऐन डेन–डेन माने अंधेरी गुफा...!'

*****

छाया हो जाएगी।

जयचन्द – हर साल बेर लगेंगे। खूब मीठे होंगे।

सुलक्खी – मैं इसे सदा जल से सींचा करूंगी। थोड़े ही दिनों से बड़ा हो जाएगा। कब फैलेगा?

जयचन्द – (पौधे को प्रेम–भरी दृष्टि से देखकर) चार वर्ष बाद। तुमने देखा, कैसा प्यारा लगता है। बड़ा होकर और भी प्यारा लगेगा। कैसा चिकना है। कैसा सुन्दर है। देखकर तबियत हरी हो जाती है?

सुलक्खी – (सरलता से) गरमी के दिन हैं, कुम्हला जाएगा। मुझे तो अब भी घबराया हुआ मालूम होता है। जरा कोंपलें तो देखो जैसे प्यास के मारे व्याकुल हो रही हों, कहिए ताजा जल भर लाऊँ, गरमी से बड़ो–बड़ों का बुरा हाल है। बिल्कुल नन्हीं–सी जान है। (चुटकी बजाकर) अभी भर लाऊँगी, दो मिनट में।

जयचन्द – इस समय तुम कहाँ जाओगी, मैं जाता हूँ।

मगर सुलक्खी ने कलसा उठाया और चली गई। थोड़ी देर बाद दोनों पति–पत्नी उस छोटे से पौधे को पानी से सींच रहे थे। ऐसे प्यार से जैसे उनका जीता–जागता बच्चा हो, ऐसी भक्ति से जैसे उनका देवता हो, ऐसी श्रद्धा से जैसे कोई अमोल वस्तु हो। पौधा सचमुच धूप से कुम्हलाया हुआ था। ठंडा पानी पीकर उसने आँखें खोल दीं। सुलक्खी बोली – देख लो। अब इसमें ताजगी आ गई है या नहीं? क्यों?

जयचन्द – मुझे ऐसा मालुम होता है, जैसे यह मुस्करा रहा है।

सुलक्खी – और मुझे ऐसा मालूम होता है कि यह बातें कर रहा है कह रहा है मैं तुम्हारा बेटा हूँ।

निःसन्तान होने पर कुंठा करते थे। यदि एक भी बच्चा हो जाता, तो दोनों का मन बहल जाता। उनका जीवन मधुर, प्रकाशमय तथा विनोदपूर्ण हो जाता। उनको कोई शुगल मिल जाता। अब ऐसा मालूम होता था जैसे उनका घर सूना–सूना है, जैसे उनके लिए दुनिया बिल्कुल फीकी–फीकी है, जैसे उनका जीवन लम्बी अंधेरी समाप्त न होने वाली रात है, जिसमें कोई तारा नहीं, कोई चांद नहीं, केवल निराशा के काले बादल घिरे हुए हैं। न बादलों में कभी–कभी थोड़ी देर के लिए आशा की बिजली भी चमक जाती है, परन्तु उसके उनके बादलों का अंधकार बढ़ता ही था, घटना न था। इसी तरह कई वर्ष गुजर गए।

एक दिन जयचन्द ने अपने आँगन के कोने में नवजात बच्चे के समान बेरी का एक पौधा देखा, जो स्वयं ही उग आया था। पोधा बहुत छोटा था और साधारण पौधों से जरा भी भिन्न न था, किन्तु जयचन्द को ऐसा प्रतीत हुआ मानो यह पौधा न था, प्रकृति का अद्‌भुत सौन्दर्य था। वे उसके छोटे–छोटे रंग–रेशे और चिकनी–चिकनी जरा–सी कोंपन देखकर बेसुध हो गये। शान्ति के पुतले पर अशान्ति छा गई। दौड़े–दौड़े सुलक्खी के पास गए, और बोले – आओ कुछ दिखाऊँ। भगवान ने हमारे घर बूटा लगाया है, बड़ा सुन्दर है।

सुलक्खी ने जाकर देखा, तो एक नन्हा–सा पौधा था बोली – क्या है यह? ऐसे प्रसन्न क्यों हो?

जयचन्द – बेरी का पौधा है, अभी छोटा है चन्द दिनों में बड़ा हो जायेगा। इसमें हरे–हरे पत्ते आयेगे। मीठे–मीठे फल लगेंगे। लम्बी–लम्बी डालियाँ फैलाकर खड़ा होगा।

सुलक्खी ने पुलकित होकर कहा – सारे आंगन में

कठिन शब्दार्थ

प्राइमर = बालकविता, कमीज़ों = कुर्ता,
गुंझल = गुच्छा, अदालत = न्यायालय,
लहजे = शैली, फ़रमायशी = निवेदन,
मतलब = अर्थ, मुस्तैदी = सतर्क,
पुख्ता = टिकना, बेलाज = निर्लज्ज,
फर्क = अन्तर, सिर्फ = केवल,
इन्साफ = न्याय, तकरीबन = लगभग,
हुनर = कला, ईजाद = आविष्कार,
गर्क = गाढना, प्राइमर = बालकविता,
कमीज़ों = कुर्ता, गुंझल = गुच्छा,
अदालत = न्यायालय, लहजे = शैली,
फ़रमायशी = निवेदन, मतलब = अर्थ,
मुस्तैदी = सतर्क, पुख्ता = टिकना,
बेलाज = निर्लज्ज, फर्क = अन्तर,
सिर्फ = केवल, इन्साफ = न्याय,
तकरीबन = लगभग, हुनर = कला,
ईजाद = आविष्कार, गर्क = गाढना,
हुक्म = आदेश, दहशत = कोलाहल,
ज्यादा = अधिक, हयादार = पानीदार,
मातवी = रोवन,

दही वाली मंगम्मा

मास्ति वेंकटेश अय्यंगार ''श्रीनिवास''

लेखक परिचय

मास्ती वेंकटेश अयंगार (6 जून 1891 – 6 जून 1986) कन्नड़ भाषा के एक जाने माने साहित्यकार हैं। वे ''चिक्कवीरा राजेंद्र'' नामक कथा के लिये भारत के सर्वोच्च साहित्यिक सम्मान ज्ञानपीठ पुरस्कार से सम्मानित किये गये हैं। यह सम्मान पाने वाले वे कर्नाटक के चौथे लेखक थे। उनकी तुलना हिंदी के कथा सम्राट् प्रेमचंद से की जाती है। उन्होंने ''श्रीनिवास'' उपनाम से कई सामाजिक और ऐतिहासिक कहानियाँ रची। वे सिर्फ कथाकार ही नहीं, बल्कि उपन्यासकार, नाटककार, कवि सब कुछ थे। एक समय सरकार में आई.सी.एस. अधिकारी रह चुके मास्ति ने सरकारी सेवा से इस्तीफा दिया और अपने जीवन काल में स्वतंत्र लेखन को अपनाया। पूरे कन्नड़ जगत् को अपना प्रेम बरसाया। मास्तीजी ने कुल मिलाकर 137 पुस्तकें लिखीं जिसमे से 120 कन्नड भाषा में थीं तथा शेष अंग्रेज़ी में। उनके ग्रन्थ सामाजिक, दार्शनिक, सौंदर्यात्मक विषयों पर आधारित हैं। कन्नड भाषा के लोकप्रिय साहित्यिक संचलन, ''नवोदया'' में वे एक प्रमुख लेखक थे। वे अपनी क्षुद्र कहानियों के लिये बहुत प्रसिद्ध थे। वे अपनी सारी रचनाओं को ''श्रीनिवास'' उपनाम से लिखते थे। मास्तीजी को प्यार से

थीं, जो एक मूर्ख और हठी जाट के क्रोध का शिकार हो गई। उसने अपने पति से जो प्रण किया था, उसे पर वह ध्रुव के समान अटल रही। उसमें सन्देह नहीं, वह साधारण ब्राह्मणों से गरीब थी, परन्तु पतिव्रत धर्म की दौलत से मालामाल थी। यह मर्यादा की पुजारिन थी। उसने जो कहा था, वह करके दिखा दिया। उसके पति ने एक वृक्ष को अपनी सन्तान कहा था, सुलक्खी ने मरते दम तक पति के इस वचन को निबाहा। यही बात है जिसने उसे इतने दिनों के बाद आज भी गाँव में जीती–जागति शक्ति बना रखा है। हिन्दू देवी–देवताओं का पूजन करते हैं। मुसलमान पीर–फकीरों को मानते हैं, परन्तु देवी सुलक्खी का शानस दोनों के हृदय पर है। क्या मजाल जो कोई उसकी अवहेलना कर जाये?

देवी सुलक्खी इसी गाँव के एक निर्धन ब्राह्मण जयचन्द की स्त्री थी। जयचन्द के घर में स्त्री के अतिरिक्त कोई भी न था– न माँ, न बाप, न बहन, न भाई। बस पति–पत्नी ही थे, कोई बाल–बच्चा भी न था। कुछ दिन इलाज करते रहे, परन्तु जब सारा परिश्रम निष्फल हुआ तो भाग्यविधान पर सन्तुष्ट होकर बैठे रहे। उय युग के ब्राह्मण लोग प्रायः नौकरी इत्यादि न करते थे, न धन दौलत में उस समय ऐसी मोहिनी थी न लोग धन को दुर्लभ समझकर उसकी प्राप्ति के लिए अधीर रहते थे। थोड़े ही में गुजारा हो जाता था। एक कमाता था, दस खाते थे। आज वह जमाना कहाँ? दस कमाने वाले हों एक बेकार को नहीं खिला सकते। उस समय के ब्राह्मण सारा–सारा दिन पूजा पाठ में लगे रहते थे। खाने–पीने को जाट जजमानों के यहां से आ जाता था। दोनों को किसी प्रकार की चिन्ता न थी। हाँ कभी–कभी

प्रेम तरु

डेढ़ सौ साल बीत चुके हैं, परन्तु देवी सुलक्खी का नाम आज भी उसी तरह जीता जागता है। गुरदासपुर के जिले में कड़याला नाम का एक छोटा सा गांव है, जहां ज्यादा आबादी हिन्दू जाटों की है। वहाँ आप किसी से पूछिये, वह आपको देवी सुलक्खी कही समाधि का पता बता देगा। यहां प्रति वर्ष मेला लगता है, स्त्रियाँ रंग–बिरंगे वस्त्र पहनकर आती हैं और समाधि पर घी के दीपक जलाती हैं। जब बेर पकते हैं, तो सबसे पहले बेर देवी सुलक्खी की समाधि पर चढ़ाये जाते हैं। इसके बाद लोग खाते हैं। क्या मजाल उसकी समाधि पर बेर चढ़ाये बिना कोई केर को मुंह भी लगा जाये। दीवाली की रात को लोग पहले यहाँ दीये जलाते हैं, इसके बाद घर में जलाते हैं। किसी में इतना साहस नहीं कि देवी सुलक्खी की समाधि पर रोशनी किये बिना अपने घर में रोशनी कर ले। ब्याह के बाद दुल्हनें पहले यहाँ आकर अपनी श्रद्धा प्रकट करती हैं, इसके बाद अपनी ससुराल में पाँव धरती है। किसी में हिम्मत नहीं कि गाँव की इस रीति को तोड़ सके। देवी की समाधि गाँव के मध्य में है। उसके ऊपर श्रद्धालुओं ने संगमरमर की एक सुदृढ़ और सुन्दर छत खड़ी कर दी है। इस छत के ऊपर एक झण्डा लहराता है, जो आस–पास के गाँवों से भी नजर आता है। देवी सुलक्खी ने कोई संग्राम नहीं जीता, न कोई राज्य स्थापित किया, न काई उसमें विशेष आत्म–शक्ति थी जो लोगों के दिलों को पकड़ लेती, न उसमें लोगों के लिए कोई बलिदान किया। वह एक गरीब, सीधी–सादी, अनपढ़ परन्तु सतवन्ती ब्राह्मण कन्या

मास्ती कन्नड़दा आस्ती कहा जाता है, क्योंकि उनको कर्नाटक के अनमोल रत्न माना जाता है। मैसूर के माहाराजा नलवाडी कृष्णराजा वडियर ने उनको राजसेवासकता की पदवी से सम्मानित किया था।

*****

दही वाली मंगम्मा (कन्नड़ कहानी)

मंगम्मा बहुत साल से हमें बारी से दही दिया करती थी। यह बारी बंगलोर के ढंग की है। दूसरे शहरों में, रोज आकर दही देना और महिने के बाद पैसे लेने को बारी कहते हैं। पर लगता है कि बंगलोर में एसी बारी का रिवाज नहीं। आमतौर पर जब भी मंगम्मा हमारे मोहल्ले में आती, तब वह हमारे घर आकर, ''दही लोगी माँ जी, बहुत बढ़िया है'' कहती। हमें आवश्यकता होती तो हम ले लेते और उस दिन के भाव के अनुसार उसके पैसे दे देते या अगले दिन चुका देते। यह हमारी उसकी बारी की रीति है। वह अवलूर के पास के किसी गांव की है। उसके गाँव का नाम शायद वेंकटपुर या कुछ ऐसा ही है। आते समय हमारे मोहल्ले से होकर ही आना पड़ता है और जाती बार भी हमारी तरफ से ही जाना होता है। मैं जरा उससे अच्छी तरह बात करती हूँ। इसलिए कभी–कभी गांव से आते समय और सारा दही खत्म करके जाते समय दोनों बार मेरे पास आ जाया करती। आकर आंगन में थोड़ी देर बैठती, सबसे बातें करती। पान–सुपारी खाती। न

रहने पर कभी–कभी हमसे पान–सुपारी मांगकर खाकर गांव जाती। ऐसे मौकों पर यदि मेरे पास समय होता तो वह अपना दु:ख–सुख भी बताया करती। मुझसे भी सुख–दु:ख पूछती। मुझे भला कौन–सा कष्ट था? भगवान की कृपा से सब कुछ ठीक–ठाक ही था। मैं भला क्या सुनाती? यही कि बिल्ली ने दूध पी लिया, चूहे ने कुम्हड़े में छेद कर दिया। तब वह ''दुनिया ही ऐसी है'' कहकर अपने अनुभव की बातें सुनाती। बाद में यह भी कहती कि इस दुनिया में किस ढंग से चलना चाहिए। मंगम्मा मुझे बहुत अच्छी लगती। मुझमें और उसमें बहुत घनिष्ठता हो गयी।

हाल ही में कोई एक महीने पहले की बात है ।मंगम्मा ने सबेरे–सबेरे आवाज लगाई, ''दही लोगी मांजी।'' मैं भीतर कुछ कर रही थी। मेरा बेटा बोला, ''हाँ लेंगी'' और पास जाकर ''दही दो'' कहकर उसने हाथ फैलाया। मंगम्मा ने मटकी से थोड़ा अच्छा गाढ़ा–गाढ़ा दही निकालकर उसकी हथेली पर डाल दिया और बोली, ''जरा जाकर माँ जी को जल्दी से भेज दो, मुझे जाना है।'' इतने में मैं आ गयी। मंगम्मा बोली, ''माँ जी, सोने जैसा बेटा पैदा किया है। जैसे गुण तुम्हारे हैं वैसे ही उसे मिले हैं। पर इन सबसे क्या? ये लड़के के बड़े होने तक की बात है। बड़े हो जाने पर पता नहीं कैसी आयेगी। अब जो बच्चा अम्मा–अम्मा करता पीछे–पीछे घूमता है उसे ही यह पता नहीं होगा कि अम्मा जिन्दा है या मर गयी?'' मैंने पूछा, ''क्यों मंगम्मा, क्या हो गया? बेटे ने तेरी बात नहीं मानी?'' वह फिर से बोली, ''छोडिए मांजी, भाँवरें लेकर आया पति ही जब बात नहीं पूछता था तो बेटा क्या सुनेगा?'' इस पर मैंने पूछा, ''तेरे घरवाले ने तेरी बात मानी

प्रेम तरु

सुदर्शन

लेखक परिचय

[सुदर्शन का जन्म सन् 1896 ई. में पंजाब के सियालकोट (अब पाकिस्तान) में हुआ। आपका नाम बदरीनाथ था और काव्यनाम सुदर्शन था। बी.ए. शिक्षा प्राप्त करने के बाद, आर्य समाज से प्रभावित होकर समाज सुधारक के रूप में प्रचार कार्य में रह रहे। कुछ समय बाद उर्दू में लिखना प्रारम्भ किया। बाद में हिन्दी में लिखना शुरू किया था। आपने उपन्यास, नाटक, बाल साहित्य लिखा और आपको कहानीकार के रूप में प्रसिद्धि प्राप्त हुई।

प्रेम–तरु कहानी में प्रेम की महिमा का वर्णन किया गया है। सुलक्खी निर्धन ब्राह्मण जयचन्द की पत्नी है। नि:सन्तान थे। अपने आँगन में एक बेरी का पौधा निकलता है। उसे अपने बच्चे के समान प्यार करते हैं। पेड़ में जब मीठा बेर निकलता है तो गाँव में सब को बाँटते हैं। जब एक जजमान हाडीराम को बेर न मिला तो वह पेड़ को ही काट डालता है। दुख से सुलक्खी बेरी की चिता बनाकर उसमें कूद जाती है।]

*****

कुत्ता दीवाल को लाँघकर घुस गया और खाना खा आया। और तू आदमी कहलाने वाला, हाय–हाय करके मर गया। तू दीवाल लाँघ नहीं सकता था? दीवाल तोड़ नहीं सकता था?''

''लेकिन भगवन!'' मैंने कहा, ''वह दीवाल कैसे तोड़ता? कैसे लाँघता? यह पाप न होता?''

भगवान ने क्रोध से कहा, ''पाप–पुण्य के झमेले में पड़ने वाले कायर! वह दीवाल क्या मेरी बनायी हुई है? तमाम दीवाले आदमियों ने खड़ी की हैं? और तू उन्हें तोड़ने में पाप–पुण्य देखता है? मुर्ख! तेरा कुत्ता तुझसे ज्यादा समझदार है। वह घुस गया, खाया और डण्डे की मार से मरकर यहाँ आ गया। उसमें मनुष्यत्व है, तुझमें पशुत्व भी नहीं! मैंने तुम्हें बुद्धि दी है, हाथ पैर दिए हैं, कार्यशक्ति दी है – और तू अकर्मण्य, बुजदिल कीड़े सा मर गया। मनुष्यों ने मुझे बहुत निराश किया, अब मैं कुत्ते–ही–कुत्ते निर्माण करने का विचार कर रहा हूँ। तुम जैसे अकर्मण्य, कायर, भीरू, मूर्ख को नरक नहीं तो क्या इन्द्रासन मिलेगा?''

मैं नरक में ढकेल दिया गया। और मैं इस कोने से तुमसे कह रहा हूँ कि हे मेरे देशवासियों! मेरी जैसी मौत न मरना, मेरे कुत्ते की तरह मरना।

*****

कठिन शब्दार्थ

नफरत = द्वेश, बेजुबान = गूंगा,
फरियाद = विनती,

क्या?'' वह कहने लगी, ''अरे, माँ जी, मेरे भाग्य में एक अच्छी धोती नहीं थी। किसी और ने पहन ली। वह साड़ी के चक्कर में उसी के पीछे लग गया। जो भी हो वह समझता रहा, मेरा घर है, मेरी घरवाली है। इसलिए मैं भी चुप रही कि घरवाला तो है। सच कहती हूँ, अमृत बेचती रही, पति खा गयी। पता नहीं मेरे नसीब में क्या–क्या लिखा है? पर तुम्हें एक बात कहती हूँ, ध्यान रखिएगा। घरवाला जब घर आये तो अच्छी तरह कपड़े–लत्ते पहनकर घूमा करो। मर्दों का मन बड़ा चंचल होता है। उनकी पसन्द की साड़ी–ब्लाऊज पहननी चाहिए। फूल, इत्र आदि लगाकर उनके मन को बस में करना चाहिए। तुमने जो साड़ी अब पहन रखी है, काम–धन्धे के लिए तो यह ठीक है। जब घर में अकेली रहती हो, तो तब के लिए तो यह ठीक है। शाम के समय एक बढ़िया साड़ी पहनकर रहना चाहिए।'' मुझे जरा हंसी आयी। लेकिन ऐसा लगा कि अनुभव से कितनी बड़ी बात कह रही है। साथ ही यह दु:ख हुआ कि उस अनुभव के पीछे दु:ख छिपा है। मैं बोली, ''हाँ मंगम्मा, तुम्हारी बात सोलह आने सच है।'' बाद में मंगम्मा बोली, ''देखो माँ जी, आदमी को ढंग से बस में रखने के तीन–चार गुर हैं। कुछ लोग कहते हैं कि टोना–टोटका करो या जड़ी–बूटी खिला दो। अरे कहावत है, दवा करने से तो मशान ही पहुंचता है। ऐसे लोगों की बातें नहीं सुननी चाहिए। जब–तब कोई न कोई स्वाद की चीज बनाकर दो। आँखों को तृप्त करने के लिए अच्छी तरह से कपड़े–लत्ते पहन–ओढ़कर दु:खी रहने पर भी हंसकर बात करो। घर के लिए जो चाहिए एक बार खूब मंगवा लो पर बार–बार मांगो मत। पैसा–पैसा जोड़कर जरूरत पड़ने पर एक–दो रुपये

उन्हें थमा देने चाहिए। ये हैं सबसे बड़े टोने–टोटके। घरवाली ऐसा करे तो घरवाला घर में कुत्ते की तरह रहता है। अगर ऐसा न करे तो गलियों में भटकता है।'' मुझे मंगम्मा की बात के चमत्कार से आश्चर्य हुआ। इधर–उधर की बातें करके मैंने उसे भेज दिया।

कोई पन्द्रह दिन पहले जब मंगम्मा घर आयी तो लगा कि वह बहुत दुःखी है। मैंने पूछा, ''क्यों मंगम्मा, ऐसी क्यों हो?'' वह बोली, ''क्या बताऊँ माँ जी, ऐसा लगता है मेरी किसी को भी जरूरत नहीं।'' यह कहकर उसने अपने पल्ले से आंसू पोंछे। मैने पूछा, ''क्या हुआ है? बेटे ने कुछ कह दिया क्या?'' उसने कहा, ''हाँ माँ जी, कुछ ऐसा ही हो गया। बहू ने किसी बात पर पोते की खूब पिटाई कर दी। तो मैंने कहा, ''क्यों री राक्षसी, इस छोटे से बच्चे को काहे को पीट रही है? तो वह मेरे ही ऊपर चढ़ बैठी। खूब सुनाई उसने। तब मैंने भी उससे कह दिया, ''मैं तेरे घरवाले की माँ हैं। तू मुझसे इत्ती जबान लड़ा रही है! आने तो दे उसे।'' यह महाराजा घर आया। उससे मैं बोली, ''देख भैया, इसने बेमतलब में अनजान बच्चे को इत्ती जोर से पीटा, मैंने मना किया तो मुझे ही चार सुनाती है। तू जरा अपनी घरवाली को अकल सिखा।'' इस पर वह बोली, ''मुझे क्या सिखायेंगे! लड़का अगर कुछ ऊधम करता है तो उसे मना करने का हक मुझे नहीं? तुमने जैसे इन्हें पैदा किया वैसे ही मैंने उसे पैदा नहीं किया? मुझे अक्ल सिखाने चली हैं।'' जो भी हो माँजी, वह उसकी घरवाली है, मैं माँ हूँ। उसे कुछ कहा तो पलटकर जवाब देती है। मुझे कहें तो मैं क्या कर सकती हूँ। इस पर वह बोला, ''हां मां, वह अपने बेटे को मारती है तो तुम क्यों उसके

निकल रहे थे। पर मुझे इस जानवर के सामने चीखने में लज्जा आयी। इधर मेरे पेट में आखिरी ऐंठ आयी और पंछी ने पिंजरा खाली किया, उधर मेरे कुत्ते की भी दम टूटी। डण्डे की चोट बड़े मर्म की थी। दोनों मरे, एक साथ मरे – फर्क इतना कि वह खाकर मरा और मैं बिना खाये।

उधर बारात उठी, इधर चाण्डालों ने टीन की गाड़ी में मुझे पटककर घसीटा। सड़क के उस ओर से अमीर के लड़के की बारात जा रही थी, इस ओर से मेरी यह सरकारी अर्थी। सरकार ने भोजन का प्रबन्ध नहीं किया था, पर मरने वालों की लाशों को दफनाने का इन्तजाम बहुत अच्छा किया था। उधर बारात के पीछे मंगलगान हो रहा था। मेरी लाश के पीछे एक भी रोने वाला नहीं था। ऐसी सफाई से मरा कि किसी को कष्ट न हुआ, कुत्ते तक को नहीं। बारात पहुँच गयी थी। गोले छूट रहे थे, ओर इधर अपर्याप्त लकड़ी में मेरी हड्डियाँ चटचटा रही थीं।

ऐसा मरा। और मर कर यहाँ जब आया तो मुझे कुछ दुख नहीं हुआ, जब मैं नरक में भेज दिया गया। मैंने प्रतिवाद करना सीखा नहीं था और यह स्थान भी उससे ज्यादा खराब नहीं था जहाँ मैं जिन्दगी भर रह चुका था।

कहानी भगवान ने सुनी। बोले, ''तुम भूख से मरे न? फिर भी तुम नरक में रहोगे। और यह कुत्ता, स्वर्ग में रहेगा। और यह तुम्हारे बगल का कमरा उसे झूठे मंत्री के लिए खाली होगा।''

मैंने पैर पकड़ लिये। बोला, ''भगवन, यह कैसा न्याय है!''

वे बोले, ''मूर्ख कायर, तू कुत्ते से भी हीन है! बेचारा

के पीछे एक ओर से पाखाना साफ करने का दरवाजा है और दूसरी ओर दीवार के सहारे मेरी छपरी। अट्टालिका का मालिक मेरी छपरी तोड़कर वहाँ भी अपना पाखाना बनाना चाहता था। अगर मैं मर न जाता तो गरीब आदमी की झोंपड़ी पर अमीर के पाखाने की विजय भी इन आँखों से देखता। अब तो तुम मेरा स्थान जान गये होंगे। आदमी से अधिक तो तुम अट्टालिका को पहचानते हो। अट्टालिका के सहारे आदमी को जानना तो तुम्हें खूब आता है।

बस यहीं झोंपड़ी में रहा मैं। मेरे आसपास अन्न–ही–अन्न था। दीवाल के उस पार से जो चूहे आते वे दिन–पर–दिन मोटे होते जाते और दो रोज तक तो वे इसलिए नहीं आए कि निकलने का थोड़ा मार्ग बनाते रहे। पर मैं फिर भी भूखा रहा। बेकार था। अनाज दस रुपये सेर था। इससे तो मेरे लिए मौत सस्ती थी।

आखिर मेरी मौत भी आयी। जिस दिन आयी, उस दिन अट्टालिका के उस पार वाले रईस के लड़के की शादी थी। बड़ी अमीर था। सारा गाँव जानता था कि उसके पास हजारों बोरे अन्न था, पर कोई कुछ नहीं कहता था। पुलिस उसकी रक्षा करती थी। और उस दिन मेरी मौत धीरे–धीरे काला पंजा बढ़ाती आती थी। मेरे पेट में ऐंठ आयी, आँखें धुँधली पड़ीं। दीवाल के उस पार पकवानों की सुगन्ध आ रही थी। यही संतोष रहा कि पकवानों के बीच मेरी मौत हुई।

मौत के जरा पहले मेरा प्यारा कुत्ता बरबस दीवाल के उस पार घुस गया और पकवान खा गया। मालिक ने उसे खींचकर एक डण्डा मारा और वह कराहता हुआ मेरे पास आकर पड़ गया। चीखता रहा, चीखता रहा। मेरे भी प्राण

झंझट में पड़ती हो? तुम मुझे दण्ड दो।'' तब मैंने कहा, ''क्यों रे, मुझी से सलती हुई, कहता है।'' तब वह बोला, ''गलत हुआ या ठीक। कोई अपने बच्चे को मारे तो उसे मना किया जा सकता है क्या?'' मुझे बहुत गुस्सा आया माँ जी। बात मेरे मुंह से निकल ही गयी, क्या कहता है रे, बीवी ने तुझ पर जादू फेर रखा है? वह चाहे बच्चे को पीटे तो भी ठीक है और मुझे गाली दे तो भी ठीक है, बहुत अच्छे। कल वह कह दे, मां को निकाल दे तो तु निकाल बाहर ही करेगा?'' इस पर वह बोला, ''और क्या किया जा सकता है मां, अगर तुम यह कहो कि घरवाली रहेगी तो मैं नहीं रहती और मैं रहूंगी तो घरवाली नहीं रह सकती तो उस बेचारी को सहारा कौन देगा?'' मैंने पूछा, तो मुझ बेसहारा का क्या बनेगा?'' तो उसने कह ही दिया, ''तुम्हारा क्या है माँ, तुम्हारे पास गाय है, बैल है, पैसा है, तुम्हें मैं क्या पाल सकता हूँ?'' मैंने पूछा, ''तो तुम्हारा कहना है कि मैं अलग हो जाऊँ?'' इस पर उसने साफ कह दिया, ''तुम्हारी मर्जी। अगर तुम अलग होना चाहती हो तो रोकूँगा नहीं। मैं तुम्हारे झगड़ों से तंग आ गया हूँ।'' तब मैं बोली, ''अच्छी बात है बेटा, आज दोपहर से मैं अलग हो जाती हूँ। तुम और तुम्हारी घरवाली सुख से रहो।'' कहकर दही लेकर चली आयी माँ जी।'' यह कहकर मंगम्मा रो पड़ी। मैंने तसल्ली दी, ''अरे! यह सब कौन–सी बड़ी बात है। लौटकर घर जाओ और सदा की तरह ही रहो। सब अपने आप ठीक हो जाएगा। जाने भी दो मंगम्मा।'' कहकर दही लेकर उसे पैसे दिये।

अगले दिन जब मंगम्मा आयी तो पिछले दिन जैसी दुखी नहीं दीख रही थी। लेकिन मन पहले की तरह हल्का

नहीं था। मैंने पूछा, ''झगड़ा निपट गया कि नहीं मंगम्मा?'' इस पर उसने जवाब दिया, ''वह निबटने देगी क्या? कल दही बेचकर गयी तो मेरे बरतन–भांडे अलग रख दिये थे। एक कुठले में रागी और एक में चावल, थोड़ा–सा नमक–मिर्च सब एक तरफ रखकर आप खाकर और अपने पति को खिलाकर पांव पसारे बैठी थी। आप बताओ माँ जी, झगड़ा कैसे निवटेगा? मैंने थोड़ा हिट्टु बनाकर खाया। मेरे मुंह से बातों का निकलना ही उनके लिए बहुत था। शादी के बाद बेटा कभी अपना रहता है माँ जी? ठीक है, जब उन्हें चाहिए नहीं मैं ही क्यों जबर्दस्ती करूं? अलग ही रहने लगी माँ जी। रोज उसी बच्चे को थोड़ा–सा दही देकर बाद में बेचने आया करती थी। आज ठीक उसी समय वह उस बच्चे को लेकर कहीं चली गयी थी। मैं जानती हूँ कि उसकी यह चाल है कि मैं उस बच्चे से बात कर न पाऊँ।'' इतनी छोटी–सी बात की कैसी रामायण बनती जा रही है, मुझे आश्चर्य हुआ पर मैं इसमें कुछ कर नहीं सकती थी। इधर–उधर की कुछ बातें करके मैंने मंगम्मा को विदा किया।

बाद में दो–एक दिन मैंने वह बात उठाई ही नहीं। ऐसा लगा कि वह अलग ही रहने लगी है। एक दिन उसी ने पूछा, ''माँ जी, आप जो मखमल पहनती हैं न वह कैसे गज मिलती है?'' मैंने पूछा, ''क्यों मंगम्मा?'' तब वह बोली, ''इतने दिन तो बेटे और पोते के लिए पैसा–पैसा जोड़ती रही। अब भला क्यों जोडूँ? मैं भी एक मखमल की जाकिट पहनूंगी?'' मैंने कहा, ''एक जाकिट के सात–आठ रुपये लगते हैं, मंगम्मा।'' उस दिन मंगम्मा ने जाकर दर्जी से वह कपड़ा लिया और वहीं सिलने दे दिया। दूसरे दिन वही पहनकर आयी। मुझसे कहने

के पास गया और प्रार्थना की, ''हे भगवन! पृथ्वी पर अन्याय भोगकर इस आशा में यहाँ आया कि न्याय मिलेगा, पर यह क्या कि मेरा कुत्ता तो स्वर्ग में और मैं नरक में! जीवन भर कोई बुरा काम नहीं किया। भूख से मर गया, पर चोरी नहीं की। किसी के आगे हाथ नहीं फैलाया। और यह कुत्ता जैसे कुत्ता होता है वैसा ही तो है यह। कई बार आपका भोग खाते पिटा यह! और इसे आपने स्वर्ग में रख दिया।''

और भगवान ने एक बड़ी बही देखकर कहा कि इसमें लिखा है कि तुमने आत्महत्या की! मैंने कहा कि नहीं महाराज, मैं भूख से मरा। मैंने आत्महत्या नहीं की। पर वे बोले, ''नहीं, तुम झूठ बोलते हो। तुम्हारे देश के अन्न मंत्री ने लिखा है कि तुमने आत्महत्या की। तुम्हारे शरीर के पोस्टमार्टम से यह बात सिद्ध हुई है।'' और भगवान आसमान से गिरते–गिरते बचे, जब मैंने कहा कि महाराज, यह रिपोर्ट झूठ है। मेरा पोस्टमार्टम हुआ ही नहीं। अरे मैं तो जला दिया गया था। इसके दस दिन बाद संसद में प्रश्नोत्तर हुए। तो क्या मेरी राख का पोस्टमार्टम हुआ? और तब मैंने उन्हें पूरा हाल सुनाया।

लो तुम भी सुना। तुम नहीं जानते मैं कहाँ जिया, कहाँ रहा, कहाँ मरा? दुनिया इतनी बड़ी है कि कोई किसी का हिसाब नहीं रखता।

और तुम क्या जाने कि जब मेरी सांस चलती थी तब भी मैं जिन्दा था। मैं इस अर्थ में जीवित था कि मैं रोज मृत्यु को टालता जाता था। वास्तव में तो मैं जन्म के पश्चात एक क्षण ही जीवित रहा और दूसरे क्षण से मेरी मौत शुरू हो गयी। तो बाजार की उस अट्टालिका को तो जानते हो। उसी

के मंत्री ने संसद में कहा कि मेरी मौत भूख से नहीं हुई, मैंने आत्महत्या कर ली थी। मारा जाऊँ और खुद ही मौत का जिम्मेदारी ठहराया जाऊँ? भूख से मरूँ और भूख को मेरे मारने का श्रेय न मिले? 'अन्न! अन्न' की पुकार करता मर जाऊँ और मेरे मरने का कारण में भी अन्न का नाम न आवे? लेकिन खैर, मैं यह सब भी बरदाश्त कर लेता। जिन्दगी – भर तिरस्कार का स्वाद लेते–लेते सहानुभूति मुझे उसी प्रकार अरुचिकर हो गयी थी जिस प्रकार शहर के रहने वाले को देहात का शुद्ध घी। लेकिन आज ही एक घटना और यहाँ इस लोक में घट गयी।

हुआ यह कि स्वर्ग और नरक को जो दीवार अलग करती है, उसकी सेंध में से आज सवेरे मेरे कुत्ते ने मुझे देखा और 'कुर–कुर' करके प्यार जताने लगा। और मेरे आश्चर्य और क्षोभ का ठिकाना न रहा कि मैं यहाँ नरक में और मेरा कुत्ता उस और स्वर्ग में! यह कुत्ता मेरा बड़ा प्यारा कुत्ता, युधिष्ठिर के कुत्ते से अधिक! जबसे मेरी स्त्री एक धनी के साथ भाग गयी थी तभी से यह कुत्ता मेरा संगी रहा, ऐसा कि मरा भी साथ ही। कभी मुझे छोड़ा नहीं इसने। बगल का सेठ इसे पालना चाहता था, सेठानी तो इसे बेहद प्यार करती, पर यह मुझे छोड़कर गया नहीं, लुभाया नहीं। सो मुझे सुख ही हुआ कि वह स्वर्ग में आनन्द से है पर मेरे अपने प्रति किये गये अन्याय को तो भुलाया नहीं जा सकता। और भाई यह तुम्हारा मृत्युलोक तो है नहीं जहाँ फरियाद नहीं सुनी जाती, जहाँ फरियादी को ही दण्ड दिया जाता है, जहाँ लालफीते के कारण आग लगने के साल भर बाद बुझाने का आर्डर आता है। यहाँ तो फरियाद तुरन्त सुनी जाती है। सो मैं भी भगवान

लगी, ''देखो माँ जी, मेरा सिंगार। घरवाले के रहते एक अच्छी साड़ी नसीब नहीं हुई। वह तो किसी के पीछे लगा था। मैंने बेटे के लिए सब पैसे जोड़े, अब यह लड़का ऐसा हो गया। अब कैसा है मेरा सिंगार।''

मुझे लगा कि बेटे से अलग होने के कारण दु:ख से मंगम्मा को जरा मतिभ्रम हो गया है। जब ज्यादा गुस्सा आ जाता है तो हर किसी के साथ ऐसा ही हो जाता है। मैंने कुछ न कहा। पर उस जाकिट के कारण उसे किसी दूसरे से झगड़ा मोल लेना पड़े। उसके गाँव का एक लड़का बंगलोर में पढ़ रहा था। वह फिरंगियों की तरह अथवा पढ़े–लिखे हम जैसों की तरह जरा नफासत से कालर–टाई पहनता था, जरा शौकीन था। उसने एक दिन मंगम्मा को देख कर पूछा, ''क्या बात है अम्मा, एकदम मखमल की जाकिट ही पहन ली है?'' तब मंगम्मा ने कह दिया, ''क्या रे लड़के, यों बढ़ बढ़कर बातें कर रहा है? तू तो गले में फांसी लटकाये घूमता है, मैं जाकिट नहीं पहन सकती।'' दोनों में तू–तू मैं–मैं हो गयी। पास खड़े चार लोग हंस पड़े।

अगले दिन मंगम्मा ने ही यह बात मुझे सुनाई। दूसरों की बात तो दूर उस बहू ने भी मंगम्मा को सुनाते हुए कहा, ''बहू को एक जाकिट सिलाकर नहीं दी। सास अलग हो गयी और अब मखमल की जाकिट पहनने लगी है।'' मंगम्मा ने ब्याह में बहू को कानफूल, कड़े, झुमके, गले की जंजीर, कण्ठी, और तगड़ी यह सब दिया था। बाद में भी साल के साल कोई न कोई गहना बनवा देती थी। बहू को याद नहीं रहा। मंगम्मा उसकी बात सुनकर एक–दो बार तो चुप रही, बाद में वह अपने को रोक न पाई। एक दिन रात को जाकर

बेटे से कह दिया, ''तेरी घरवाली बड़ी बातें बनाती है। मेरी जाकिट पर ताने कसती है। कहती है, मैंने उसे कुछ भी नहीं दिया। क्या मैंने कुछ नहीं दिया? कड़े, कानफूल–झुमकी, पदक, क्या यह सब मेरे दिये हुए नहीं?'' बहू ने पति को बोलने का मौका ही नहीं दिया, वही बोली, ''अब तो घरवाला भी नहीं, ऊपर से बुढ़िया भी हो गयी हो। अब कानफूल और तगड़ी पहनोगी? ले जाओ, पहन लो। वहीं बैठे पति ने उससे कहा, ''क्यों रीतू बकवास किये जा रही है?'' फिर मां से बोला, ''मां, मैं तुम लोगों का झगड़ा पसन्द नहीं करता। अगर तुम्हें चाहिए तो सारे जेवर ले जाओ।'' मंगम्मा बोली, ''देखो मां जी, रास्ता चलने वाले भी अपनी पत्नी से यह नहीं कहते कि तुम ऐसी बात कहो।''चाहिए तो जेबर लेकर चलो जाओ, कहकर उसने सारा दोष मुझी पर मढ़ दिया। अब यह जन्म किस लिए?'' यह सुनकर मुझे बड़ा दुःख हुआ। वह भी बुढ़िया हो चली थी। एक ही बेटा था। इसकी पत्नी को अपनी सास और पति की अच्छी तरह देख–भाल नहीं करनी चाहिए? यह सब झमेला क्यों? सिर्फ इसलिए न कि बुढ़िया ने अपने पोते को पीटने को मना किया। भला यह सब क्या हो रहा है! बात मुझे समझ में आयी। जहाँ भी देखो झगड़े का कारण ऐसा ही होता है। जब कोई एक दूसरे को पसन्द नहीं करता तब छोटी बातें भी बड़ी हो जाती है। बेकार के झगड़े उठ खड़े होते हैं। उससे सम्बन्धित सभी लोगों को बेहिसाब दुःख उठाना पड़ता है।

कुछ दिन बाद एक दिन मंगम्मा बोली, ''माँ जी, आप बहुत भली हैं, मेरे पास थोड़े–से पैसे रखे हैं, उसे कहीं बैंक में रखवा दीजिए, उन पर कई लोगों की आंखें लगी हैं।'' मैंने

मिनट', 'हम विहार से चुनाव लड़ रहे हैं', 'विकलांक श्रद्धा का दौर' (व्यंग्य), 'मैं कहता आँखिन देखी', 'माटी कहे कुम्हार से', 'निठले की डायरी', 'सुनो भाई साधो', 'तुलसीदास चन्दन घिसै' (स्तम्भ), 'मुक्तिबोध : एक संस्मरण' (संस्मरण), 'मनीषीजी', 'दल बदलने वाला' (रेखाचित्र), 'गर्दिश के दिन' (आत्मकथा)। इनकी रचनाएँ 'परवाई रचनावाली' (छह खंडों) में संकलित हैं।

निधन : 1995 ई.

*****

मैं नरक से बोल रहा हूँ

हे पत्थर पूजने वालों! तुम्हें जिन्दा आदमी की बात सुनने का अभ्यास नहीं, इसलिए मैं मरकर बोल रहा हूँ। जीवित अवस्था में तुम जिसकी ओर आँख उठाकर नहीं देखते उसकी सड़ी लाश के पीछे जुलूस बनाकर चलते हो। जिन्दगी भर तुम जिससे नफरत करते रहे उसकी कब्र पर चिराग जलाने जाते हो। मरते वक्त तब जिसे तुमने चुल्लू भर पानी नहीं दिया, उसके हाड़ गंगाजी ले जाते हो। अरे, तुम जीवन का तिरस्कार और मरण का सत्कार करते हो। इसीलिए मैं मरकर बोल रहा हूँ। मैं नरक से बोल रहा हूँ।

मगर मुझे क्या पड़ी है कि जिन्दगी भर बेजुबान रहकर, यहाँ नरक के कोने से बोलता! पर यहाँ एक बात ऐसी सुनी कि मुझ अभागे की मौत को लेकर तुम्हारे यहाँ के बड़े–बड़े लोगों में चखचख हो गयी। मैंने सुना कि तुम्हारे यहाँ

दूर तक मार करने वाले व्यंग्य बाणों के धनी परसाई से व्यंग्य साहित्य नित–नूतन भाव से समृद्ध हुआ है।

देश, धर्म, जनता, संस्कृति, राजनीति आदि वे क्षेत्र हैं जहाँ से परसाई अपने व्यंग्य लेखन के लिए कच्ची सामग्री प्राप्त करते हैं। इनके व्यंग्य पाखंडी पूँजीपतियों, मुखौटाधारी राजनेताओं तथा छद्म साहित्यकारों के लिए प्रायः घबराहट के कारण बने हैं। बेलाग और निर्भीक विचाराभिव्यक्ति के कारण एक बार इन्हें शारीरिक हमले का शिकार भी बनना पड़ा। समाज और धर्म के अनेक अन्तर्विरोधों को उजागर कर इन्होंने भोली–भोली जनता का मार्गदर्शन किया। इनके व्यंग्य सहती नहीं हैं और न ही उनमें हलकापन है। गुदगुदाने के स्थान पर वे उत्तेजित करते हैं। हँसाते वे उतना नहीं जितनी चुभन देते हैं। कई बार तो पाठक पढ़कर भौंचक्का सा रह जाता है और सोचने पर विवश हो जाता है। पाखंड, रूढ़ियों और मिथ्याचार इनके निशाने पर रहे हैं।

हरिशंकर परसाई के व्यंग्य निबन्ध अपनी शैली और भाषा में अद्भुत और अपूर्व है।

व्यंग्य लेखों के अतिरिक्त परसाई जी ने अनेक उपन्यास और कहानियाँ भी लिखी हैं। इनकी प्रमुख रचनाएँ हैं 'हँसते हैं, राते हैं', 'जैसे उनके दिन फिरे', 'सुदामा के चावल', 'भोलानाथ का जीव' (कहानियाँ), 'रानी नागफनी की कहानी', 'तट की खोज' (उपन्यास), 'घायल वसन्त', 'गेहूँ का सुख', 'निन्दा रस' (निबन्ध), 'वाक आउट', 'स्लीप आउट', 'ईट आउट', 'सदाचार का तावीज', 'शिकायत मुझे भी है', 'इंस्पेक्टर मातादीन चाँद पर', 'वैष्णव की फिसन', 'ठिठुरता हुआ गणतंत्र', 'रामकथा दीपक', 'घुटन के पन्द्रह

पूछा, ''ऐसा क्या हो गया?'' वह बोली, ''माँ जी, कल ही की बात है। हमारे गांव में रंगप्पा नाम का एक आदमी है। वह कभी–कभार जुआ–बुआ खेलता है। बड़ा शौकीन तबियत का है। मैं जब दही लेकर आ रही थी तो वहीं यह टपक पड़ा और पूछने लगा, ''क्यों मंगम्मा अच्छी तो हो?'' तब मैंने कहा, ''क्या अच्छा और क्या बुरा; जो है तुम्हें पता नहीं?'' तब वह बोला, ''हाँ भई, तुम्हारा कहना ठीक है। आज के जमाने में भला कौन सुखी है, आज कल के लड़कों की जबान का क्या ठिकाना? हमारे जैसी उमर के लोगों को तो बस देखते रहना ही पड़ता है। और कर भी क्या सकते हैं।'' वह वैसे ही साथ चला आया। रास्ते में अमराई वाला कुआँ है। वहाँ से गुजरते समय मुझे डर–सा लगा, मैं सोचने लगी, पता नहीं यह क्या कर डाले? अण्टी में काफ़ी पैसे थे। कहीं इसी के लिए तो पीछे–पीछे नहीं आया? वही बोला, ''जरा चना दोगी?'' मैंने दे दिया, वह लेकर चला गया। आज भी आते समय वहीं आकर मिला माँ जी। इधर–उधर की बातें करता–करता बीच में बोला, ''मंगम्मा, मैं जरा तकलीफ़ में हूँ। थोड़ा–सा कर्ज दोगी इस बार रागी बेचते ही लौटा दूंगा। मैं बोली, ''अरे भैया, मेरे पास पैसे कहाँ?'' तब वह कहने लगा, ''जाने दो मंगम्मा क्या हमें पता नहीं? पैसे को यहाँ–वहाँ गाड़कर रखने से भला क्या मिलता है?'' फिर थोड़ी देर बाद वही बोला, ''तुम्हारा बेटा तुम्हारे साथ रहता तो मैं तुमसे कर्ज नहीं मांगता। मैं जानता हूँ। तुम अपनी बहू के लिए कोई न कोई चीज बनवाती रहती थी। अब वह बात तो नहीं रही।'' देखो माँ जी, औरत अगर अकेली हो जाती है तो लोगों की आँखें उसकी तरफ लग जाती हैं।''

तब मैंने मंगम्मा से कहा, ''मैं अपने घरवाले से पूछकर बताऊंगी, मैंने उनसे इस बारे में कोई बात नहीं की।'' दूसरे दिन मंगम्मा ने दही देने के बाद अण्टी से एक थैली निकाली। और कहने लगी, ''माँ जी, जरा भीतर चलो, गिन लो।'' तब मैं बोली, ''मैंने अभी उनसे पूछा नहीं। अभी रखे रहो फिर ले आना।'' मंगम्मा कहने लगी, ''मुझे बहुत डर लगता है माँ जी। आज भी रंगप्पा आया था, अमराई के पास तक। कहने लगा, ''जरा बैठो मंगम्मा, ऐसी जल्दी भी क्या हैं?'' मेरे पास ये पैसे भी थे। मेरा दिल जोर–जोर से धड़कने लगा। अगर मैं नहीं रुकती और जबरन बांह पकड़कर बिठा ले तो? इस डर से बैठ गयी। वह दुनिया–जहान की बातें करता रहा। बाद में मेरा हाथ पकड़कर बोला, ''मंगम्मा, तुम कितनी अच्छी हो।'' जवानी में भी घरवाले ने मेरा इस तरह हाथ नहीं पकड़ा। बाद में किसी और ने इस हाथ को नहीं पकड़ा। आज इसने आकर पकड़ा। मैंने हाथ छुड़ा लिया और ''क्या बात है रंगप्पा, आज बड़े रंग में हो। मेरा अच्छापन देखने को तुम मेरे घरवाले हो क्या?'' कहते हुए उठकर तेजी से चली आयी माँ जी। कल उसने पैसे मांगे थे, आज उसने मान माँगा। जिसने मंडुवे के तले बैठकर और बांधकर, गठबन्धन करके, हाथ थामा वह तो कभी का चला गया। भरी जवानी में घरवाले ने मुंह मोड़ लिया। कोई और होती तो यह सोचकर खुश हो जाती कि घरवाले ने तो पसन्द नहीं किया पर कोई तो पसन्द करने वाला मिला। पर मैंने अपना धर्म नहीं छोड़ा। इस बदमाश ने आ कर मेरा हाथ घरवाले से भी ज्यादा हक से पकड़ लिया था।''

मुझे लगा कि बेचारी का जीवन बेकार में ही दुखी

मैं नरक से बोल रहा हूँ

हरिशंकर परसाई

लेखक परिचय

मध्य प्रदेश के होशंगाबाद जिले के जमानी नामक ग्राम में 22 अगस्त 1924 में इनका जन्म हुआ। नागपुर विश्वविद्यालय में एम.ए. (हिन्दी) करने के बाद कुछ दिनों तक नौकरी की, लेकिन सन् 1957 में नौकरी से त्यागपत्र देकर स्वतंत्र लेखन को अपनी आजीविका का साधना बनाया। जबलपुर से 'वसुधा' नामक पत्रिका निकाली। 'नई दुनिया' में 'सुनो भाई साधो' और 'नई कहानियाँ' में 'पाँचवाँ कॉलम' नाम से स्थायी स्तम्भ लिखते रहे हैं। हिन्दी के प्राय: सभी प्रमुख पत्र–पत्रिकाओं में अपनी रचनाएँ मुख्य रूप से व्यंग्य लेख प्रकाशित हुए हैं। व्यंग्य लेखन में परसाई जी का अपना विशिष्ट स्थान और शैली है। जिस चुटीलेपन और मधुर–तीखेपन के लिए व्यंग्य विख्यात हैं, वह सब परसाई जी की रचना में मिलता है। एक बार जिस समस्या पर लेखनी उठ गई, उसकी ऐसी बखिया उधेड़ते हैं सुनने–पढ़ने वाला धन्य–धन्य हो उठता है पर जिस पर व्यंग्य का तीर सधता है, वह पानी–पानी हो जाता है।

परसाई प्रमुख व्यंग्यकार रहे हैं। उन्होंने राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक विसंगतियों तथा साहित्यिक स्थितियों पर तीखे व्यंग्य किए हैं। सीधी सरल भाषा में तीखे–सधे और

प्रबल प्रमाण का भी अविश्वास कर, झूठी आशा को दोनों बांहों में लपेटकर अपनी छाती से चिपकाए रखा जाए, तो वह अन्त में एक दिन सारी नाड़ियों को काटकर हृदय का खून चूसकर भाग जाती है और तभी चेतना आती है।

चेतना आने के बाद भी दूसरे भ्रान्तिजाल में फंसने के लिए उसका चित्त व्याकुल होता रहता है।

*****

कठिन शब्दार्थ

काबिल = योग्य, तनख्वाह = वेतन,
मेहनत = श्रम, तबीयत = स्वास्थ्य,
कमजोर = बलहीन, तीमारदारी = सेवा,
दरख्वास्त = विनती, खामोश = मौन,
फिक्र = चिंता, मामूली = साधारण,
ऑफिस = कार्यालय

होता जा रहा है। इसलिए मैंने कहा, ''यह सब फजीहत काहे को करती हो मंगम्मा? चुपचाप जो हुआ उस पर मिट्टी डालकर बेटे के साथ रह क्यों नहीं जाती?''

''मैं तो रह जाऊँगी माँ जी, पर वह रहने दे तब न?''

''बेटे से यह सब बता दो।''

''हाय राम, हो–हल्ला करके मेरी बहू तो मुझे जाति से ही बाहर कर देगी। मुझे देर हो रही है। माँ जी, चलती हूँ। कल अपने उनसे पूछकर रखिएगा।'' कहकर मंगम्मा चली गयी।

एक घण्टे बाद फिर से आकर बोली, ''माँ जी, आज एक बात हो गयी।''

''क्या?''

''बच्चे के लिए थोड़ी–सी मिठाई लेकर टोकरे में रख ली थी।'' मंगम्मा ने पहले ही बताया था कि उसके पोते को उसके पास वह आने नहीं देती इसलिए मुझे यह समझ में न आया कि बच्चा कौन–सा है? मैंने पूछा, ''किस बच्चे के लिए?''

''और कौन–सा बच्चा माँ जी? मेरा पोता ही तो?''

मैं बोली, ''तुम्हीं ने तो कहा था कि वे तुम्हारे पास नहीं आने देते?''

उसने कहा, ''उसकी माँ तो मना करती हैं पर बच्चा क्या रुक सकता है? आँख बचाकर आ ही जाता है। कभी–कभी जरा दूध पी जाता है, कभी दही मांग लेता है। थोड़ा–सा कुछ मिल जाने पर नाच उठता है। अगर जरा शोर मचाता है तो ''मेरी मां सुन लेगी'' कहते ही चुप हो जाता है। बच्चों का खेल ही तो असली खेल है। उसी के लिए थोड़ी–सी मिठाई लेकर रखी थी। वह सुंकापुर है न उधर से आ रही थी। वहाँ

एक आम का पेड़ है न, उस पर बैठा एक कौआ झट से मिठाई की पुड़िया उठा ले गया । देखिए आज कैसी अजीब बात हो गयी?'' तब मैं बोली, ''एक मिठाई की पुड़िया चली गयी तो क्या हो गया? फिर से खरीद लो।'' मंगम्मा बोली, ''यह बात नहीं माँ जी, कहते हैं कि कौवे को आदमी को नहीं छूना चाहिए। इसीलिए कहा।'' मैंने पूछा, ''छूने से क्या जाता है? इस पर उसने कहा, ''कहते हैं। उससे जान का खतरा हो जाता है। मुझे लगा कि मेरे दिन पूरे तो नहीं हो चले। बाद में यह सोचकर खुशी भी हुई कि चलो अच्छा हुआ। यह जन्म किसी को भी नहीं चाहिए। अच्छा है जल्दी से भगवान् के चरणों में पहुँच जाऊँगी। जो भी हो, आज यह हुआ।'' मैंने उसे समझाते हुए कहा, ''तुम भी कैसी पागलपन की बातें कर रही हो? पहले तो ऐसे रखकर लाओ कि कौवे को मिठाई आसानी से मिल जाय और अगर वह उठा ले जाये तो कहो कि जान का खतरा। यह कौन–सी अकल की बात है। जाओ, चुपचाप घर जाओ।'' तब वह पूछने लगी, ''तो आपका यह कहना है कि कोई डर नहीं है?'' मैंने कहा, ''डर–वर कुछ भी नहीं। जितना झगड़ा होता है। उमर बढ़ती है दुबारा उस बारे में मत सोचो। हंसते हंसते घर जाओ।''

मंगम्मा चली गयी। मैं उसकी मानसिक स्थिति के बारे में सोचकर आश्चर्यचकित हुई। बेटा चाहिए, बहू चाहिए, पोता चाहिए, साथ ही वह घर की बड़ी है यह लालसा छूटी नहीं। जीवन के प्रति एक विचित्र–सी ऊब। फिर भी मरने की इच्छा नहीं। यह इच्छा नहीं, यह प्रकट करने का भी मन नहीं। हम सोचते हैं, ये गांव के लोग है, कुछ जानते नहीं, कोई लुकाव–छिपाव नहीं। तो भी ऐसे लोगों की मानसिक स्थिति के पीछे भी

भूतपूर्व पोस्टमास्टर ने एक गहरी सांस ली, फिर कार्पेट का बैग लटकाए, कन्धे पर छतरी रखे, मजदूर के सिर पर नीले और सफेद रंग से चित्रित टीन का बक्सा रखवाकर धीरे – धीरे घाट की ओर चल दिए। जब वे नाव पर सवार हुए और नाव छूट गई, वर्षा में फैली हुई नदी धरती के आवेश से निकले आंसुओं की तरह चारों ओर झिलमिलाने लगी, तब हृदय में वह एक गहरी टीस का अनुभव करने लगे।

एक मामूली गंवई लड़की का करुण मुखड़ा जैसे एक विश्वव्यापी बड़ी और अनकही मर्म – व्यथा बनकर उनके हृदय को व्यथित करने लगा।

एक बार बड़ी इच्छा हुई कि लौट जाएं, संसार की गोद से छिटकी हुई उस अनाथ बालिका को साथ लेते आए, लेकिन तब तक बादबान में हवा भर चुकी थी, वर्षा का प्रवाह वेग से बह रहा था, गांव पार कर नदी – किनारे श्मशान दिखाई दे रहा था और वर्षा प्रवाह पर बहते हुए मुसाफिर के उदास हृदय में इस सत्य का उदय हो रहा था, जीवन में ऐसी बिछुड़नें कितनी ही और आएगी, कितनी मौतें आती रहेंगी, इसलिए लौटने से क्या फायदा? दुनिया में कौन किसका है? ''किन्तु रतन के मन में किसी भी सत्य का उदय नहीं हुआ। वह उस पोस्ट – ऑफिस – गृह के चारों और केवल आंसू ढरकाती चक्कर लगा रही थी।

शायद उसके मन में क्षीण आशा जाग रही थी कि दादा लौट आएं और इसी बन्धन में फंसी वह किसी तरह भी कहीं दूर नहीं जा सकती थी। हाय रे, बुद्धिशून्य मानव – हृदय! भ्रान्ति किसी तरह से भी मिटती नहीं। युक्ति शास्त्र का विधान बहुत देर में मन में बैठता है।

स्नान के बाद रतन की पुकार हुई। रतन चुपचाप घर के भीतर गई और आज्ञा की प्रतीक्षा में उसने एक बार मालिक के मुंह की ओर खामोश होकर देखा। मालिक ने कहा, ''रतन, मेरी जगह पर जो बाबू आएंगे, उन्हें मैं बता जाऊंगा कि तुझे मेरी ही तरह जतन से रखें।

मैं जा रहा हूं, इसीलिए फिक्र मत कर।'' इसमें सन्देह नहीं कि ये बातें अत्यन्त स्नेह – भरे और करुण हृदय से निकली थीं, लेकिन नारी – हृदय को कौन समझ सकता है? रतन ने बहुत दिन तक मालिक की बहुत डाट – फटकार सही हैं, लेकिन ये कोमल बातें उससे नहीं सही गई।

सहसा वह फफककर रो पड़ी, बोली, ''नहीं, तुम्हें किसी से कुछ कहने की जरूरत नहीं है। मैं भी नहीं रहना चाहती हूँ। पोस्टमास्टर ने रतन का ऐसा व्यवहार कभी नहीं देखा था इसलिए विस्मित रह गए। नया पोस्टमास्टर आया।

उसे सब बातें समझाकर पुराने पोस्टमास्टर चलने की तैयारी करने लगे। जाते वक्त रतन को बुलाकर कहा, ''रतन, मैं तुझे कभी कुछ दे नहीं सका। आज जाते वक्त तुझे कुछ दिए जा रहा हूं। इससे तेरे कुछ दिनों का काम चल जाएगा। ''अपने राह – खर्च के लिए कुछ रुपये रखकर तनख्वाह के जितने रुपये थे, जेब से सब निकालकर उसे देने लगे।

रतन धूल में लोट पड़ी और उनके पैर पकड़कर बोली, ''दादा, तुम्हारे पांव पड़ती हूं, पांव पड़ती हूं, मुझे कुछ देने की जरूरत नहीं। तुम्हारे पांव पड़ती हूं, मेरे लिए किसी को कुछ करने की जरूरत नहीं।''इतना कहकर वह वहां से दौड़कर चली गई।

परतों पर परतें हैं। बड़े घड़े में जैसे छोटा पड़ा समाया है। मैंने सोचा यह कैसा नाटकीय सूत्र है!

मंगम्मा जब फिर से आयी तो उसने एक समाचार दिया। अब पोता अपने मां–बाप को छोड़कर उसके पास आ गया है। वह बहुत खुश थी। उसके साहस की प्रशंसा करते हुए बोली, ''बित्ते भर का छोरा है। मां को छोड़कर चले आने का मतलब क्या है? कल दोपहर को आये लड़के ने ''फिर से मां के पास नहीं जाऊँगा'' कह दिया। इत्ते दिन चोरी–चोरी आया करता था। जब वह घर नहीं पहुंचा तो माँ ने आकर शोर मचाया, पीटने की धमकी दी। बच्चा ''मैं नहीं जाऊँगा'' कहकर मेरी टांग पकड़कर खड़ा हो गया। और कोई चारा न देखकर मैंने कहा, ''जा बेटा, ''उसके बाप'' ने भी आकर बुलाया पर ''मैं नहीं जाऊँगा'' कहकर मेरे पास ही रह गया माँ जी। दस दिन से अकेले घर में सोती थी। जरा डर भी लगता था। जो भी हो मर्द बच्चा है। भगवान ने देखो उसको कैसी अकल दी। जवान बेटे ने मुंह मोड़ लिया और यह बित्ते भर का पोता मैं तो हूँ। तुम चिन्ता मत करो'' कहकर आ ही गया। बहू ने तो सारी रात महाभारत मचाया। लाख जोर लगाने पर भी वह गया नहीं। सुबह यहाँ आते समय ''तू अकेला कैसे रहेगा?'' कहकर उसे उसकी मां के दरवाजे पर ले जाकर खड़ा किया, तब वह भीतर गया और मैं यहाँ आयी।'' अब मैंने पूछा, ''अब अगर वह बच्चे को पीटे तो तुम क्या करोगी? वह बोली, ''अरे माँ जी, क्या उसे इस बात की खुशी नहीं होगी कि बेटा एक बार तो घर आता है? पास रहे तो मारने को मन करता है। देखो माँ जी, जब हम इकट्ठे थे तब मुझे कभी यह लगा नहीं कि मेरी बहू कितनी सुन्दर है,

अब दूर से देखती हूँ। यह तो ठीक है कि उसकी भौहें चढ़ी ही रहती है फिर भी वैसे बड़ी सुन्दर दिखती है। इसलिए तो मेरा बेटा उस पर लटू है। वह भी ऐसा ही है। तब यह पता नहीं चलता था कि कब घर आता था और कब खेत पर जाता था। अब मैं घर के दरवाजे पर बैठी यह देखती रहती हूँ। इतनी जल्दी क्यों चला गया? इतनी देर तक क्यों नहीं आया? माँ जी, उसे भी तो ऐसा लगता होगा न? यदि वह पीटेगी तो दही बेचने को निकलूंगी तो मेरे साथ ही चला आयेगा। नौ महीने पेट में रखकर पीर सहकर पैदा किये बच्चे को छोड़ देगी क्या?'' मुझे यह सोचकर आश्चर्य हुआ कि वह कितनी दूर तक सोचती है। तब मुझे लगा कि कुछ ही दिनों में उनका झगड़ा निबट जाएगा और सभी सुखी रहेंगे।

हुआ भी ऐसा ही। दो दिन बाद लड़का मां के पास गया पर उसके दूसरे दिन ही ''दादी के साथ मैं भी बंगलोर जाऊँगा'' कहकर जिद पकड़ ली। बेचारी बुढ़िया के लिए सिर पर दही की मटकी वाला टोकरा और गोद में पोते को ले कर तीन मील चलकर आना असम्भव था। उसकी समझ में न आया किया करे? बेटे और बहू ने भी आकर समझाया, ''उस दिन हमसे गलती हो गयी। तुम भी गुस्सा करके अगर रहोगी तो कैसे चलेगा मां।'' गांव के चार बड़े–बड़ों ने भी उसे समझाया, वह भला क्यों अपना बड़प्पन खोती? मंगम्मा अपनी इच्छा से ही फिर से खुशी–खुशी अपनी बहू के साथ रहने लगी। परन्तु पोता तो दादी के पास ही रहने की जिद पकड़े बैठा था। इसलिए एक नया प्रबन्ध था। शुरू से ही दूध व दही का व्यापार मंगम्मा के हाथ में था। बहू के आने पर भी मंगम्मा ने उसे अपने हाथ में ही रखा। जब कोई बहू बनकर आती है

रहा हूं।'' जा रहा हूँ।

रतन, ''फिर कब आओगे?''

पोस्टमास्टर, ''फिर नहीं आऊंगा।''

रतन ने फिर कोई बात नहीं पूछी। पोस्टमास्टर ने खुद ही उससे कहा कि उन्होंने बदली की अर्जी दी थी, वह अर्जी मंजूर नहीं हुई। इसलिए, नौकरी से इस्तीफा देकर घर जा रहे हैं। बहुत देर तक कोई कुछ भी न बोला। दीया टिमटिमाता रहा और एक जगह मडैया की पुरानी छाजन से चूकर एक मिट्टी के सकोरे में टप – टप बारिश का पानी टपकता रहा।

कुछ देर बाद रतन धीरे – से उठकर रसोई में रोटी सेंकने चली गई। दूसरे दिनों की तरह उसमें फुर्ती न थी। शायद बीच – बीच में बहुत – सी चिन्ताएं उसे आ घेरती थीं। पोस्टमास्टर का भोजन समाप्त होने पर बालिका एकाएक पूछ बैठी, ''दादा, मुझे अपने घर ले चलोगे?''

पोस्टमास्टर ने हंसकर कहा, ''सो कैसे हो सकता है?
''

किन – किन कारणों से वे उसे नहीं ले जा सकते, यह बताने की जरूरत उन्होंने न समझी। रात – भर जागते हुए या सपने में बालिका के कानों में पोस्टमास्टर की वह हंसी गूंजती रही, सो कैसे हो सकता है? सवेरे उठकर पोस्टमास्टर ने देखा कि उनके नहाने का पानी तैयार है।

कलकत्ता की आदत के अनुसार वे बाल्टी में भरे हुए पानी से नहाते थे। कब किस वक्त वे जाएंगे, यह बात वह बालिका किसी कारण न पूछ सकी थी, इसलिए कहीं भोर – सवेरे ही जरूरत न पड़ जाए, यह सोचकर रतन रात रहते ही नदी से पानी भर लाई थी।

रतन अब बालिका न रही। उसी क्षण उसने जननी का स्थान ले लिया।वैद्य बुला लाई, वक्त पर दवा की टिकिया खिला दी, रात – भर सिरहाने बैठी जागती रही, खुद ही जाकर नाश्ता बना लाई और सौ – सौ बार पूछती रही, ''क्यों दादा, कुछ आराम मालूम पड़ता है?''

बहुत दिनों बाद पोस्टमास्टर कमजोर शरीर लेकर रोग – शय्या से उठे।उन्होंने मन – ही – मन इरादा कर लिया कि बस, अब और नहीं, यहां से किसी भी तरह तबादला कराना ही है। इस जगह की अस्वास्थ्यकर आबोहवा का उल्लेख कर फौरन उन्होंने कलकत्ता के अधिकारियों के पास अर्जी भेज दी।

तीमारदारी से छुट्टी पाकर रतन दरवाजे के बाहर फिर अपनी जगह पर जा बैठी, लेकिन पहले की तरह उसकी बुलाहट नहीं हुई। बीच – बीच में वह झांककर देखती कि पोस्टमास्टर अनमने – से तख्त पर बैठे हैं या चारपाई पर लेटे हुए हैं।

रतन जब बुलाहट की प्रतीक्षा में बाहर बैठी रहती थी, तब वह बेचैनी से अपनी दरख्वास्त के जवाब की प्रतीक्षा करते रहते। बालिका दरवाजे के बाहर बैठी अपना पुराना पाठ हजार बार पढ़ती रही। उसे डर था कि जिस दिन अचानक उसकी बुलाहट होगी, उस रोज कहीं संयुक्ताक्षरों का पाठ वह भूल गई तो?

अन्त में, हफ्ते – भर के बाद एक दिन शाम को पुकार हुई। व्याकुल हृदय लिए रतन भीतर गई और बोली, ''दादा, मुझे बुला रहे थे? '' पोस्टमास्टर बोले, ''रतन, मैं कल रतन, ''कहाँ जा रहे हो दादा?'' पोस्टमास्टर, ''घर जा

तो घर के खाने पकाने की जिम्मेदारी भी उस पर पड़ती है। वास्तव में बात यह थी कि दही बेचने पर चार पैसे हाथ आते थे। अब पोते ने सदा दादी के पास रहने की हठ पकड़ी थी। बहू बोली, ''इतनी धूप में इस उमर में तुम क्यों बाहर फुंकती हो। भला कितने दिन यह काम कर सकोगी? घर में ही खाना–पीना बनाकर मालकिन की तरह रहो। दही बेचने का काम मैं देख लेती हूँ।'' मंगम्मा ने कह दिया, ''ठीक है। साथ ही यह भी कहा, ''कभी–कभार मैं चली जाऊँगी। पर रोज जाने का काम तुम्हीं करो।'' एक दिन सास–बहू दोनों आयीं। एक की गोद में बच्चा था और दूसरी के सिर पर मटकी वाला टोकरा।''यही है, माँ जी मेरी बहू।बुढ़िया क्यों बेचारी अकेली रहे सोचकर इसने फिर से मुझे अपने साथ बुला लिया। साथ ही यह भी कहा, ''तुम बेकार में धूप में मत घूमो।'' मैंने भी मान लिया है। आगे से यही दही बेचने आयेगी।'' यह बताकर मंगम्मा ने बहू को हमें दिखा दिया। मैंने सास और बहू से बात करके और ''संयम से काम लेना चाहिए'' कहकर दो बातें अकल की समझाकर दोनों को पान–सुपारी देकर भेज दिया। आजकल वह बहू ही दही लाया करती है।

मैंने सोचा सास के बारे में तो इतना सब सुना, अब बहू क्या कहती है यह जानने की उत्सुकता मुझे हुई। इसलिए एक दिन मैंने कहा, ''अरी, नंजम्मा, तू तो बड़ी समझदार है। पर क्या सास को निकाल देना ठीक था?'' उसने जवाब दिया, ''सास को निकाल देने को मैं क्या कोई राक्षसी हूँ। माँजी? सास हो जाने का मतलब सब बात उसकी रहनी चाहिए क्या? जो अपने बेटे को मर्द भी न माने तो वह नामर्द नहीं हो जाएगा? वह मेरा घरवाला है, मैं उसकी पत्नी हूँ। भला मैं घर

कैसे चलाऊँ? यह ठीक है उसने जन्म दिया, पाला पोसा, चाहे तो वह अपने बेटे पर अपना हक रखे। मैं चुप रही पर क्या मैं अपने बेटे को भी मार नहीं सकती? तो मैं कहाँ की बहू रही?'' मैंने पूछा, ''बेटा तुम्हारा है यह जताने को पीटना ही एक पहचान है क्या?'' वह बोली, ''मारना, प्यार करना तो चलता है पर यदि मारने पर इसे क्यों मारती है यह पूछती है तब प्यार करने पर क्यों प्यार करती हैं'' भी पूछ सकती है न? इसलिए इन सब से कौन माथा–पच्ची करे। मेरा बेटा, मेरा है। मेरा पति मेरा होना चाहिए। बहू होकर मैं अगर एक बात न कह सकूँ, एक थप्पड़ न लगा सकूँ तो मेरा घर चलाना किस काम का?'' मुझे मंगम्मा ने जब अपनी बात सुनाई थी तब लगा था कि उसकी बात सही थी। अब इसने अपनी बात कही तो लगा इसकी बात भी सही है। इस पर मैंने पूछा, ''तो अब तुम्हें घर में कुछ छूट मिली?'' ''अब पहले से जरा ठीक है। जो भी हो जरा बहुत सम्भलकर चलना ही पड़ता है। अगर झगड़ा करूं तो मेरी सास पता नहीं किसे सारे पैसे दे डाले? हमारे गांव में रंगप्पा नाम का एक आदमी है। जब मेरी सास अलग थी तब उसने मेरी सास से कर्ज मांगा। यह देने को तैयार हो गयी थी। यह रंगप्पा से ही पता चला था। तब मैंने बच्चे को सिखाया, तू अपनी दादी के पास चला जा, वह मिठाई देती है। हमारे घर कदम मत रखना झगड़ा किसी तरह निपटाने को मैंने यह सब किया माँ जी।'' मैंने पूछा, ''तो पोता दादी के पास अपने आप नहीं गया?'' वह बोली, ''बच्चा भी गया मैंने भी भेज दिया, माँ जी। यह सब बताने की बातें थोड़े ही हैं। आदमी लोग यह सब समझते हैं।''

मुझे ऐसा लगा नंजम्मा भी अकल में मंगम्मा से कुछ

पढ़ना सिखाऊंगा।''

कहकर सारी दोपहर ''छोटा अ '', ''बड़ा आ '' सिखाते रहे और इस तरह थोड़े ही दिनों में उसे ''संयुक्ताक्षर'' तक पढ़ा दिया। सावन में वर्षा का कोई अन्त नहीं। ताल – तलैया, नदी – नाले सब पानी से लबालब भर गए थे। दिन – रात मेंढ़कों की टर्र – टर्र और वर्षा की अम – झम गूंजती रहती थी। गांव के रास्तों पर चलना – फिरना बन्द हो गया था।

नाव पर बैठकर हाट जाना पड़ता था। एक दिन सवेरे खूब बादल छाए हुए थे। पोस्टमास्टर की छात्रा बहुत देर तक दरवाजे के पास प्रतीक्षा में बैठी थी, किन्तु दूसरे दिनों की तरह नियमित पुकार जब देर तक नहीं सुन पड़ी, तो वह अन्त में खुद ही अपनी पोथी और बस्ता लिए कमरे मे अन्दर पहुंची।

देखा, पोस्टमास्टर अपनी चारपाई पर पड़े हैं। यह सोचकर कि वे आराम कर रहे हैं, उसने चुपके से बाहर निकल जाना चाहा। सहसा उसे सुनाई पड़ा, ''रतन!'' झट पलटकर वह बोली , ''दादा, तुम सो रहे थे न? '' पोस्टमास्टर ने करुण स्वर में कहा , ''तबीयत कुछ अच्छी नहीं लग रही है, देख तो जरा मेरे माथे पर हाथ रखकर।''

ऐसे निपट अकेले प्रवास में, घोर वर्षा में बीमार देह जरा सेवा पाने की इच्छा करती है। गर्म माथे पर चूड़ियों वाले गर्म हाथों का स्पर्श याद आ जाता है। इस घौर परदेस में बीमारी के कष्ट से पीड़ित हो ऐसा सोचने का जी करता है कि बगल में स्नेहमयी नारी के रूप में मां या दीदी बैठी हो।

यहाँ इस परदेस की अभिलाषा व्यर्थ न गई। बालिका

गर्मी – भरी सुख देने वाली हवा चल रही थी। भीगी घास और पेड़ – पौधों से धूप पड़ने के कारण एक तरह की गन्ध निकल रही थी। ऐसा लगता था जैसे ढ़की हुई धरती की गर्म सांस शरीर पर पड़ रही हो।

न जाने कहां का एक जिद्दी पंछी इस भरी दुपहरी में प्रकृति के दरबार में अपनी सारी एकरस शिकायतें बार – बार बड़े ही करुण स्वर में दुहराता जा रहा था। पोस्टमास्टर के पास कोई काम न था। उस दिन वर्षा से धुले नर्म – चिकने पत्तों वाले पेड़ – पौधों को हिलोरें और पराजित वर्षा की धूप से उजियाले खंडहर जैसे बादलों के स्तूप वास्तव में देखने योग्य थे।

पोस्टमास्टर यही देख रहे थे और सोच रहे थे कि काश इस समय अपने पास कोई अपना सगा होता, हृदय से सटी हुई स्नेह – भरी कोई मानव – मूर्ति होती। धीरे – धीरे उसे ऐसा लगने लगा कि वह पछी बार – बार इसी बात को दुहरा रहा है।

पेड़ों की छाह में डूबी सुनसान दुपहरी को इन पत्तों की मर्मर ध्वनि का भी अर्थ कुछ – कुछ वैसा ही है। कोई विश्वास नहीं करता और जान भी नहीं पाता, लेकिन इस छोटे से गांव के मामूली तनख्वाह पाने वाले सब – पोस्टमास्टर के मन में ऐसे ही भावों का उदय होना असम्भव नहीं है।

पोस्टमास्टर ने एक लम्बी सांस लेकर पुकारा , ''रतन! '' रतन उस समय अमरूद के नीचे आराम से बैठी एक कच्चा अमरूद खा रही थी मालिक की आवाज सुनकर फौरन दौड़ती हुई आई और हांफती हुई बोली , ''दादा, मुझे बुला रहे हो? '' पोस्टमास्टर ने कहा , ''तुझे मैं थोड़ा – थोड़ा

कम नहीं। उस घर में अब सास और बहू में स्वतंत्रता की होड़ लगी है। उसमें मां–बेटे और पति–पत्नी हैं। मां बेटे पर से अपना हक छोड़ना नहीं चाहती और बहु पति पर अधिकार जमाना चाहती है। यह सारे संसार का ही किस्सा है। इसकी हार–जीत क्या होगी यह कहा नहीं जा सकता। पानी में खड़े बच्चे का पाँव खींचने वाले मगर मच्छ की–सी दशा बहू की है। ऊपर से बांह पकड़कर बचाने की चेष्टा करने वाले की दशा मां की है। बीच में बच्चे को ही कष्ट होता है। गांव में यह बात दही बेचने वाली मंगम्मा के घर में भी है और शहर में दही खरीदने वाली तगम्मा के भी। यह नाटक चलता ही रहता है। इस नाटक का कहीं कोई अन्त नहीं है।

*****

कठिन शब्दार्थ

घनिष्ठता = गहरा, चीज = वस्तु,
ऊधम = शरारत, अक्ल = समझ,
हिट्टु = रागी का घोल,
मखमल = एक प्रकार का पकड़ा,
ऊब = परेशानी, जवान = युवा,
कदम = पग या पैर,

गौरी

सुभद्रा कुमारी चौहान

लेखिका परिचय

सुभद्रा कुमारी चौहान का जन्म सन् 1904 ई. में उत्तर प्रदेश के प्रयाग जिले के निहालपुर गाँव में हुआ। प्रारम्भिक शिक्षा प्रयाग में हुई। बचपन से ही काव्य साहित्य के प्रति अभिरुचि बनी रही, इसलिए रामायण, महाभारत तथा हिन्दी की प्राचीन तथा अर्वाचीन कवियों का साहित्य पढ़ लिया था। जब सन् 1921 ई. में असहयोग आन्दोलन प्रारम्भ हुआ तब उन्होंने स्कूली शिक्षा को तिलांजलि दे दी। उन्होंने अनेक राष्ट्रीय सत्याग्रहों में सक्रिय भाग लिया और उनके अपने पति के साथ जेल यात्रा का सौभाग्य प्राप्त हुआ। वे मध्य प्रदेश विधानसभा की सदस्या भी थीं। सन् 1948 ई. में एक मोटर दुर्घटना में 44 वर्ष की अल्पायु में उनका निधन हो गया।

सुभद्रा कुमार चौहान की कविताएं राष्ट्रप्रेम की भावना से ओत–प्रोत है। त्रिधारा, मुकुल उनकी कविताओं का संग्रह है। खूब लड़ी मर्दानी, वह तो झाँसी वाली रानी थीं – उनकी कालजयी कविता है। उनकी कहानियाँ सरल सरस और मार्मिक है। उनकी कहानियों में सामाजिक पारिवारिक और राजनीतिक जीवन के अनुभव जन्य हृदयग्राही चित्रण हैं। 'गौरी' सुभद्रा कुमार चौहान की प्रसिद्ध कहानी है। गौरी एक

जमीन पर बैठ जाती। उसे याद आता, उसका एक छोटा भाई था।

बहुत दिन पहले, बग्मात के एक दिन गदैया के किनारे दोनों भाई – बहिन मिलकर एक पेड़ की डाली को तसी बनाकर झूठ – मूठ मछली शिकार करने का खेल खेले थे। बहुत – सी महत्वपूर्ण घटनाओं से अधिक यही बात उसे ज्यादा बाद आती थी।

इसी तरह बातचीत करते – करते कभी – कभी रात हो जाती और मार आलस के पोस्टमास्टर को खाना बनाने की इच्छा न होती। सवेरे की वामी भाजी – तरकारी बची होती और चूल्हा सुलगाकर रतन दो – चार रोटी सेक लाती। उसी से दोनों का रात का खाना हो जाता। किसी दिन उस अठपहलू झोपड़ी के कोने में दफ्तर की लकड़ी के बने तख्त पर बैठकर पोस्टमास्टर भी अपने घर की बात छेड़ देते।

छोटे भाई, मां और दीदी की वाने और परदेस में अकेले घर में बैठे – बैठे जिनके लिए हृदय काफी व्यथित हो उठता था, उनका बातें करने लगते। ये बातें हर घड़ी मन में उमड़ती – मुमड़ती रहती थीं, पर नीलकोठी के गुमाश्तों से नहीं कही जा सकतीं।

वे ही बातें वे एक अनपढ़ छोटी लड़की से कहते चले जाते। उन्हें यह कतई असंगत न लगता। अन्त में ऐसा हुआ कि वह लड़की बातचीत के दौरान उनके घर के लोगों का मां, दीदी या दादा कहकर जिक्र करने लगी। यहां तक कि उसने अपने छोटे – से हृदय – पट पर उनके काल्पनिक चित्र भी बना लिए।

एक दिन बरसात के बादलों से मुक्त दोपहर को कुछ

खाने को मिल जाता है। लड़की का नाम है रतन। उम्र बारह – तेरह साल की। ब्याह की कोई विशेष सम्भावना दिखाई नहीं पड़ती।

शाम को, जब गांव की गोशालाओं से घना धुआं कुंडली बनाकर ऊपर उठता, झाड़ियों में झींगुर बोलने लगते, दूर गांव के नशेबाज गवैयों को टोली मृदंग – करताल बजाकर ऊंची आवाज में गाना शुरू कर देती, तब अंधेरे चबूतरे पर बैठे – बैठे वृक्षों का कम्पन देखते हुए कवि के हृदय में भी धड़कन होने लगती।

उस घड़ी घर के कोने में एक छोटा – सा दीया जलाकर पोस्टमास्टर पुकारते , ''रतन!'' रतन दरवाजे पर बैठी इसी पुकार का इन्तजार किया करती थी , लेकिन एक ही पुकार पर भीतर न आती, कहती, ''क्या है बाबू, काहे बुलाते हो? ''पोस्टमास्टर'' क्या कर रही है तू? ''रतन, '' अभी चूल्हा सुलगाने जाना है चौके में ...। ''पोस्टमास्टर, '' चौके का काम बाद में होता रहेगा। जा, जरा तमाखू तो बना ला।''

थोड़ी देर में दोनों गाल फुलाए चिलम पर फुके मारती हुई रतन अन्दर आती। उसके हाथ से चिलम लेकर पोस्टमास्टर झट पूछ बैठते, ''क्यों रतन, तुझे अपनी मां याद आती है?'' वह बड़ा लम्बा किस्सा है। कुछ याद है, तो कुछ याद नहीं। मां से ज्यादा उसका बाप उसे प्यार करता था।

बाप की याद थोड़ी – थोड़ी आती है। मेहनत – मजदूरी कर शाम को बाप घर लौटता था, उन्हीं में दो – एक सन्ध्या उसके मन पर चित्र की तरह स्पष्ट बहुत अंकित हैं। यही नाते करते – करते रतन पोस्टमास्टर के पैरों के पास

भारतीय नारी के समर्पण को सार्थक करती है। सीताराम देश सेवा के लिए जेल जाते हैं। गौरी संकोच त्यागकर उनके बच्चों की देखभाल के लिए बगैर विवाह के ही उनके घर आ जाती है। यह नायब तहसीलदार की पत्नी बनना स्वीकार नहीं करती है, यद्यपि उनके माता–पिता को यह रिश्ता मंजूर है। भारतीय परिवार में लड़की के विवाह की चिन्ता को इस कहानी में उसके यथार्थ रूप में रखा गया है। अन्त में गौरी का चरित्र अपनी ऊँचाई को छू लेता है। ब्रिटिश शासन काल की आजादी की लड़ाई का चित्रण यह कहानी प्रस्तुत करती है।

*****

गौरी

शाम को, गोधूलि की बेला, कुली के सिर पर सामान रखवाये, जब बाबू राधाकृष्ण अपने घर आये, तब उनके भारी भारी पैरों की चाल और चेहरे के भाव से ही कुन्ती ने जान लिया कि काम वहाँ भी नहीं बना। कुली के सिर पर से बिस्तर उतरवाकर, बाबू राधाकृष्ण ने उसे कुछ पैसे दिये। कुली सलाम करके चला गया और वे पास ही पड़ी एक आरामकुर्सी पर, जिसके स्प्रिंग खुलकर कुछ ढीले होने के कारण इधर – उधर फैल गये थे, गिर से पड़े। उनके इस प्रकार बैठने से कुछ स्प्रिंग आपस में चकराये, जिससे एक प्रकार की झन–झन की आवाज हुई। पास ही बैठे कुत्ते ने कान उठाकर इधर–उधर देखा, फिर भों–भों करके भूँक

उठा। इसी समय उनकी पत्नी कुन्ती ने कमरे में प्रवेश किया। काम की सफलता या असफलता के बारे में कुछ भी न पूछकर कुन्ती ने नम्र स्वर में कहा – चलो हाथ–मुँह धो लो, चाय तैयार है।

'चाय,' राधाकृष्ण चौंक से पड़े – 'चाय के लिए तो मैंने नहीं कहा था।'

'नहीं कहा था तो क्या हुआ, पी लो चलकर,' कुन्ती ने आग्रहपूर्वक कहा।

'अच्छा चलो,' कहते हुए राधाकृष्ण पत्नी के पीछे – पीछे चले गये।

गौरी, अपराधिनी की भाँति, माता–पिता दोनों की दृष्टि से बचती हुई, पिता के लिए चाय तैयार कर रही थी। उसे ऐसा लग रहा था कि पिता की सारी कठिनाइयों की जड़ वही है। न वह होती और न पिता को उसके विवाह की चिन्ता में, इस प्रकार स्थान – स्थान घूमना पड़ता। वह मुँह खोलकर किस प्रकार कह दे कि उसके विवाह के लिए इतनी अधिक परेशानी उठाने की आवश्यकता नहीं। माता–पिता चाहे जिसके साथ उसके शादी कर दें, वह सुखी रहेगी। न करें तो भी वह सुखी है। जब विवाह के लिए उसे जरा भी चिन्ता नहीं, तब माता–पिता इतने परेशान क्यों रहते हैं – गौरी यही न समझ पाती थी। कभी कभी वह सोचती – क्या मैं माता–पिता को इतनी भारी हो गयी हूँ? रात–दिन सिवा विवाह के उन्हें और कुछ सूझता नहीं। तब आत्मग्लानि और क्षोभ से गौरी का रोम–रोम व्यथित हो उठता। उसे ऐसा लगता कि धरती फटे और वह समा जाये, किन्तु ऐसा कभी न हुआ।

गौरी – वह गौरी जो पूनो के चाँद की तरह बढ़ना भर

पानी की मछली को रेत पर डाल देने से उसकी जैसी दशा हो जाती है , इस ठेठ देहात में आकर पोस्टमास्टर की भी वही दशा हुई। एक अंधियारे अठचाले में उनका दफ्तर है, जिसके पास ही एक सेहला – भरा तालाब है और उसके चारों ओर जंगल।

कोठी में गुमाश्ता आदि जो कर्मचारी हैं, उन्हें किसी से मिलने – जुलने की फुरसत ही नहीं और वे किसी भले आदमी से मिलने के काबिल भी नहीं हैं। खासतौर से कलकत्ता के लड़के मिलनसार होते नहीं। किसी अपरिचित स्थान में आकर या तो वे अक्खड़ बन जाते हैं या बिल्कुल सुस्त और लजीले।

इसी वजह से स्थानीय लोगों से उनका मेल – जोल नहीं हो पाता। इधर हाथ में काम – काज भी कुछ ज्यादा नहीं है। कभी – कभी वे दो – एक कविताएं लिखने की कोशिश करते हैं।

इन कविताओं में वे ऐसा भाव व्यक्त करते हैं, जैसे दिन – भर पेड़ – कोंपलों का कम्पन और आकाश के बादल देखकर ही जीवन बड़े सुख से बीता जा रहा हो, लेकिन अन्तर्यामी जानते हैं कि अगर ''अलिफलैला '' का कोई देव आकर इन डाली के साथ सारे पेड़ों को काटकर पक्की सड़क बना देता और बड़ी – बड़ी इमारतें आकाश के बादल को आंखों से ओट कर रख देता, तो इस अधमरे भले आदमी के लड़के को फिर नया जीवन मिल जाता।

पोस्टमास्टर की तनख्वाह बहुत कम है। खुद खाना पकाकर खाना पड़ता है और गांव की अनाथ लड़की उनका काम – काज कर देती है। इसके बदले उसे दो जून कुछ

पोस्टमास्टर

रबीन्द्रनाथ ठाकुर

लेखक परिचय

रबीन्द्रनाथ ठाकुर (बांग्ला) (7 मई, 1861 – 7 अगस्त, 1941) विश्वविख्यात कवि, साहित्यकार, दार्शनिक और भारतीय साहित्य के नोबल पुरस्कार विजेता हैं। उन्हें गुरुदेव के नाम से भी जाना जाता है। बांग्ला साहित्य के माध्यम से भारतीय सांस्कृतिक चेतना में नयी जान फूँकने वाले युगदृष्टा थे। वे एशिया के प्रथम नोबेल पुरस्कार सम्मानित व्यक्ति हैं। वे एकमात्र कवि हैं जिसकी दो रचनाएँ दो देशों का राष्ट्रगान बनीं – भारत का राष्ट्र–गान ''जन गण मन'' और बाँग्लादेश का राष्ट्रीय गान ''आमार सोनार बांङ्ला'' गुरुदेव की ही रचनाएँ हैं।

*****

पोस्टमास्टर

नौकरी लगते ही पोस्टमास्टर को ओलापुर गांव में आना पड़ा। साधारण – सा गांव। पास ही एक नीलहे साहब की कोठी है। साहब ने ही बड़ी कोशिश से यहां नया डाकघर खुलवाया है। हमारे ये पोस्टमास्टर कलकत्ता के रहने वाले हैं।

जानती थी, घटने का जिसके पास कोई साधन न था – बाबू राधाकृष्ण के लिए चिन्ता की सामग्री हो गयी थी। गौरी उनकी एकमात्र सन्तान थी। उसका विवाह वे योग्य पात्र का मूल्य चुकाने लायक उनके पास यथेष्ट सम्पत्ति न थी। यही कारण था कि गौरी का यह उन्नीसवाँ साल चल रहा था फिर भी वे कन्या के हाथ पीले न कर सके थे। गौरी ही उनकी अकेली सन्तान थी। छुटपन से ही उसका बड़ा लाड़ प्यार हुआ था। प्रायः उसकी उचित अनुचित सभी हठ पूरी हुआ करती थी। इसी कारण गौरी का स्वभाव निर्भीक, दृढ़–निश्चयी और हठीला था। वह एक बार जिस बात को सोच–समझकर कह दे, फिर उस बात से कोई उसे हटा न सकता था। पिता की परेशानियों को देखते हुए अनेक बार उसके जी में आया कि वह पिता से साफ–साफ पूछे कि आखिर वे उसके विवाह के लिए इतने चिन्तित क्यों हैं। वह स्वयं तो विवाह को इतना आवश्यक नहीं समझती। और अगर पिता विवाह को इतना अधिक महत्व देते हैं, तो फिर पात्र और कुपात्र क्या? विवाह करना है कर दें, किसी के साथ, वह हर हालत में सुखी और सन्तुष्ट रहेगी। उनकी यह परेशानी, इतनी चिन्ता अब उससे सही नहीं जाती, किन्तु संकोच और लज्जा उसकी जबान पर ताला–सा डाल देते। हजार बार निश्चय करके भी वह पिता से यह बात न कह सकी।

पिता को आते देख, गौरी चुपके से दूसरे कमरे में चली गयी। राधाकृष्ण बाबू ने जैसे बेमन में हाथ–मुँह धोया और पास ही रखी हुई एक कुरसी पर बैठ गये। वहीं एक मेज पर कुन्ती ने चाय और कुछ नमकीन पूरियाँ पति के सामने रख दीं। पूरियों की तरफ राधाकृष्ण ने देखा भी नहीं। चाय

का प्याला उठाकर पीने लगे।

ऐसी कन्या को जन्म देकर जिसके लिए वर ही न मिलता हो, कुन्ती स्वयं ही जैसे अपराधिनी हो रही थी। कुन्ती ने डरते – डरते पूछा – 'जहाँ गये थे क्या वहाँ भी कुछ ठीक नहीं हुआ?'

'ठीक! ठीक होने को वहाँ धरा ही क्या है,' चाय की घूँट गले में नीचे उतारते हुए बाबू राधाकृष्ण ने कहा – सब हमी लोगों पर है। विवाह करना चाहें तो सब ठीक है, न करना चाहें तो कुछ भी ठीक नहीं है।

कुन्ती ने उत्सुकता से पूछा – 'फिर क्या बात है? लड़के को देखा?'

'हाँ! देखा, अच्छी तरह से देखा हूँ।' कह राधाकृष्ण फिर चाय पीने लगे।

कुन्ती की समझ में यह पहेली न आयी, उसने कहा – 'जरा समझाकर कहो। तुम्हारी बात तो समझ में ही नहीं आती।'

राधाकृष्ण – 'समझाकर कहता हूँ, सुनो। वह लड़का–लड़का नहीं आदमी– तुम्हारी गौरी के साथ मामूली चपरासी की तरह दिखेगा। बोलो करोगी ब्याह?'

कुन्ती – 'विवाह की बात तो पीछे होगी। क्या रूप–रंग बहुत खराब है? फोटो में तो वैसा नहीं जान पड़ता।'

राधाकृष्ण – 'रूप–रंग नहीं, रहन–सहन बहुत खराब है। इतनी सिधाई भी तो अच्छी नहीं होती कि जिसके पीदे आदमी आदमी न दिखे। और फिर उमर भी तो अधिक है, पैंतीस – छत्तीस साल। साथ ही दो बच्चे भी हैं। उन्हीं बच्चों को सम्हालने के लिए तो वे विवाह करना चाहते हैं, नहीं तो

की शिद्दत से जिस्म तड़त रहा था और उसे किसी पहलू चैन न था। लगता था उसकी आत्मा तक आह व फरयाद कर रही है लेकिन उसकी छटपटाहट और तड़प, उसका दर्द से चीखना – चिल्लाना, उन सबसे मेरी जवान मर्दानगी का सुबूत मिल रहा था। और उसके बाद चारों तरफ खामोशी छा गयी जिसने मेरी अकड़ और शान को खाक में मिला दिया। अल्लाह माफ करे, मेरे कानों में अभी तक उसका दर्दनाक कराहना गूँज रहा है। वह समां अभी तक मेरी आँखों के सामने है। लेकिन उसके मरने के बाद जब लोग मुझसे यह कहने आये कि मरते वक्त उसके लबों पर मुस्कुराहट थी तो मेरे दिल को कुछ सुकून हो गया।

*****

कठिन शब्दार्थ

तस्कीन = शांत, बेगानगी = परायापन,
नफरत = द्वेश, जहालत = व्यग्र,
हिमाकत = दुराभिमान, गरूर = घमंड,
एतराफ = तिरस्कार, सलाहियत = सभ्यता,
गहमागहमी = व्यस्तता, फिजूल = व्यर्थ,
बोवफा = बेवफ, कैफियत = कुशलता,
लुत्फ = आनंद, खाकसारी = अनादर,
तब्दीलियाँ = परिवर्तन, मसलन = अर्थात,
दिलफरेबियां = चंचलता, जाहिलियत = क्रूरता,
हमदम व दमसाज = जीवन साथी, गुफ्तगु = बातचीत,
मिजाजपुर्सी = कुशल समाचार, इसरार = सलाह,
फतहयाबी = सफलता, नुमाया = प्रदर्शित,

आपकी लड़की बीमार–वीमार कुछ भी नहीं है। ये सब बेकार के अपने यहाँ रोकने के बहाने हैं। मैं उसे अपने साथ लिए जाता हूँ। मैंने अपनी बीवी से भी कहा कि आप बिल्कुल बीमार नहीं, कम से कम ऐसी बीमार नहीं जैसा यहाँ लोग आपको बनाना चाहते हैं। ये सब आपके अम्मी–अब्बू की चाल है। यह बात कोई आपसे छिपी हुई नहीं है। आप मेरे साथ चल कर रहिये तब पता चलेगा कि आपको क्या बीमारी है। पहले तो मेरी साफगोई कुछ उसकी समझ में नहीं आयी। मगर थोड़ी न – नकार के बाद वह मेरे साथ चलने पर राजी हो गयी।

हम दोनों ने एक लम्बा सफर किया और दूर पहाड़ों पर जा कर रहने लगे। बर्फ से ढकी जगह की खुश्क और ताजा हवा में दूर–दूर टहलने के लिए निकल जाते। जब थोड़े दिनों बाद मेरी बीवी की सेहत ठीक हो गयी तो उसे घर ले आया। मेरे दोस्तों और रिश्तेदारों ने जब हमें साथ देखा तो मुझे फक्र महसूस हुआ। मगर उनके दिलों में शक बाकी था। वे पूरे सुबूत के लिए किसी और चीज के इन्तजार में थे। लेकिन मुझे अपनी फतहयाबी का पूरा यकीन था। एक महीने के बाद दूसरा महीना आहिस्ता – आहिस्ता गुजरता जाता था और मेरी बीवी का पेट बढ़ता जाता था।

मेरी हालत उस माली की थी जो अपने लगाये दरख्तों पर कलियों को खिलते हुए देख कर खुशी से फूला नहीं समाता है। हर–हर दिन, हर–हर क्षण मेरी मेरी कामयाबी ज्यादा नुमाया होती जाती। लेकिन मेरी बीवी खामोश रही। मैं समझता कि उसका सबब शायद प्रसव की परेशानी और घबड़ाहट है। आखिरकार उसको प्रसव का दर्द शुरू हुआ। घंटों बेचैनी और तकलीफ का आलम रहा। दर्द

शायद न करते। उनकी दूसरी शादी है। उनकी उमंगे, उनका उत्साह सब ठंडा पड़ गया है। वे अपने बच्चों के लिए एक धाय चाहते हैं, पर मेरी लड़की की तो दूसरी शादी नहीं है। और फिर वह तो साफ–साफ कहते हैं मैं केवल बच्चों के लिए विवाह करना चाहता हूँ।'

कुन्ती ने कहा – 'जिन्हें दूसरी शादी करनी होती है वे सब बच्चों के ही बहाने तो शादी करते हैं, नहीं तो यह कहें कि अपने लिए करते हैं?'

राधाकृष्ण – 'अरे नहीं – नहीं, वह आदमी कपटी नहीं है। उसके भीतर कुछ और बाहर कुछ हो ही नहीं सकता। हृदय तो उसका दर्पण की तरह साफ है। पर उसका खादी का कुरता, गाँधी टोपी, फटे – फटे चप्पल देखकर जी हिचकता है। वह कहीं नेता बनकर व्याख्यान देने लायक तो हैं, पर किसी के घर दूल्हा बनकर जाने लायक नहीं है। इसके अलावा तीस रुपये कुल उनकी तनख्वाह है, कांग्रेस दफ्तर में सेक्रेटरी का काम करते हैं। तीन बार जेल जा चुके हैं। किस दिन चले जाते हैं, कुछ ठिकाना नहीं।'

कुन्ती – 'फिर तुमने क्या कह दिया?'

राधाकृष्ण – 'क्या कह देता? उन्हें बुला आया हूँ। अगले इतवार को आवेंगे, जिसमें तुम भी उन्हें देख लो। और वह आने के लिए भी तो बड़ी मुश्किल से तैयार हुए। कहने लगे – नहीं साहब! मैं लड़की देखने न आऊँगा। इस तरह लड़की देखकर मुझसे किसी लड़की का अपमान नहीं किया जाता। फिर जब मैंने उन्हें समझाकर कहा कि आप लड़की को देखेंगे, लड़की और उसकी माँ आपको देख लेंगी, तब कहीं बड़ी मुश्किल से राजी हुए।'

गौरी दरवाजे की आड़ में खड़ी सब बातें सुन रही थी। जिस व्यक्ति के प्रति उसके पिता इतने असंतुष्ट और उदासीन थे, उसके प्रति गौरी के हृदय में अनजाने ही कुछ श्रद्धा के भाव जाग्रत हो गये।

राधाकृष्ण बाबू पान की बीड़ा उठाकर अपनी बैठक में चले गये। और उसी रात फिर उन्होंने अपने कुछ मित्रों और रिश्तेदारों को गौरी के लिए योग्य वर तलाशने को कई पत्र लिखे।

*****

अगला इतवार आया। आज ही बाबू सीतारामजी, गौरी को देखने या अपने आपको दिखलाने आवेंगे। राधाकृष्णजी ने यह पहले से ही कह रखा है कि किसी बाहरवाले को कुछ न मालूम पड़े कि कोई गौरी को देखने आया है। अतएव यह बात कुछ गुप्त रखी गयी है। घर के भीतरी आँगन में ही उनके बैठने का प्रबन्ध किया गया है। तीन–चार कुर्सियों के बीच में एक मेज है, जिस पर एक साफ धुला हुआ खादी का कपड़ा बिछा दिया गया है। और एक गिलास में आँगन के ही गुलाब के कुछ फूलों को तोड़कर, गुलदस्ते का स्वरूप दिया गया है। बहुत ही साधारण सा आयोजन है। सीतारामजी सरीखे व्यक्ति के लिए किसी विशेष आडम्बर की आवश्यकता भी तो न थी।

यथा समय बाबू सीतारामजी अपने दोनों बच्चों के साथ आये। बच्चे भी वही खादी के पुरते और हाफपैन्ट पहने थे। न जूता न मोजा, न किसी प्रकार की ठाटबाट। पर दोनों बड़े प्रसन्न, बड़े हँसमुख, आकर घर में वे इस प्रकार खेलने लगे, जैसे इस घर से वे चिरपरिचित हों। कुन्ती एक तरफ

उनकी गंदी तथा बेकार आदतें मुझमें भी आ गयीं। ताश, शराब और बेसिर–पैर की बातों का सिलसिला जारी रहने लगा। हम अपने को संगीत का भी माहिर समझते थे। चुनांचे शहर की नामवर गानेवालियों के सरपरस्त बन बैठे। ऐसे हालत में जाहिर है कि मैंने एक औरत भी रख ली थी। हमने बेमानी और बेमकसद जिन्दगी बसर करने की यही तरकीबें निकाली थीं। हममें से जो लोग दूसरे मुल्कों का सफर कर आये थे वो अपनी जवांमर्दी और आशिकी की दास्तानें दूसरों को सुना–सुना कर उन पर रौब जमाते थ। लेकिन मेरे लिए अपनी बीवी से छुटकारा पाना नामुमकिन था। उसकी बीमारी की वजह से मेरे पास मिजाजपुर्सी के लिए खत और दोस्तों व रिश्तेदारों का एक सिलसिला कायम रहता। कोई मुझे नसीहत देता तो कोई उलाहना, कोई दिलासा देता तो कोई हमदर्दी जाहिर करता। इन सब बातों से मेरी जिन्दगी अजाब (नारकीय) हो गयी। मेरे सास और ससुर को मेरी आजादी और तौर–तरीके बहुत खलते थे। वो डरते थे कि मैं उनकी लड़की को कहीं एकदम न छोड़ दूँ। इधर मेरी माँ को लगातार इसरार था कि मैं दूसरी शादी कर लूँ। खानदान में दो ऐसे गिरोह बन गये जिन्हें एक–दूसरे से सख्त अदावत थी। दोनों मुझे अपनी तरफ खींचने की हर वक्त कोशिश करते रहते थे। लेकिन बावजूद माँ के इसरार के मैं दूसरी शादी करने पर राजी नहीं हुआ। आखिरकार, लोगों ने मेरी मर्दानगी पर शक शुरू कर दिया और तरह–तरह की कानाफूसी करने लगे। मैं अजब पशोपेश में फँस गया और मैंने यह तय कर लिया कि कुछ न कुछ जरूर करना चाहिए।

मैं अपनी ससुराल गया और वहाँ जाकर कहा कि

करते थे कि आपको इन सबके बारे में मुझे लिखने का वक्त नहीं। लेकिन अब तो आप मेरे पास हैं। अब तो आपको वक्त है।''

यह उसने जनबूझ कर मेरी खुद्दारी पर हमला किया। अब मुझे मालूम हो गया कि सालों की जुदाई ने हमारे ताल्लुकात में कोई फर्क पैदा नहीं किया है। हम पहले की तरह अब भी एक दूसरे से बेगाने थे और एक दरिया के दो अलग किनारों पर अजनबी की तरह खड़े हुए थे। हमने फिर एक – दूसरे के साथ धोखा–धड़ी शुरू कर दी।

मैंने कहा, ''हाँ – हाँ मुझे तो आपसे बहुत सी बातें करनी है। हम दोनों मिल कर क्या क्या करेंगे, यह तय करना है। लेकिन पहले आप जल्दी से अच्छी तो हो जायेंगी तब हम इसके बारे में बातें करेंगे। अभी तो आपको खमोशी से आराम करना चाहिए। आप अपने दिल – ओ– दिमाग पर जोर न डालिए। मेरे आने की वजह से शायद आपको तकलीफ हो गयी। आप आराम कीजिये और ज्यादा सोचिये मत। अच्छा, अब मैं जाता हूँ। आप सो जाइये।''

मैंने उसका हाथ छोड़ दिया और वहाँ से उठ कर चला आया। इसके बाद न तो मैंने उससे ज्यादा राब्ता बढ़ाने की कोशिश की और न किसी खास बात पर ज्यादा देर तक गुफ्तगू ही की। दिन में एक–दो–दफा उसे देखने जाया करता, दरयाफ्त करता कि उसकी सेहत कैसी है और ऐसी ही दो–एक बातें करके चला आता और अपने काम में मसरूफ हो जाता। इत्तफाक से मेरा काम भी इन दिनों अच्छा नहीं चल रहा था और मुझे फुर्सत काफी थी। रफ्ता–रफ्ता मैं फिर अपने पुराने दोस्तों की सोहबत में रहने लगा और

बैठी थी। बच्चों के कोलाहल से परिपूर्ण घर उसे क्षण भर के लिए नन्दनकानन सा जान पड़ा। उसने मन ही मन सोचा – कितने अच्छे बच्चे हैं। यदि बिना किसी प्रकार का सम्बन्ध हुए भी सीतारामजी इन बच्चों के सम्भालने का भार उसे सौंप दें, तो वह खुशी–खुशी ले ले। वह बच्चों के खेल में इतनी तन्मय हो गयी कि क्षण भर के लिए भूल बैठी कि सीताराम जी भी बैठे हैं, और उनसे भी कुछ बातचीत करनी है। इसी समय अचानक छोटे बच्चे को जैसे कुछ याद आ गया हो। दोड़कर रपिता के पास आया। उनके पैरों के बीच में खड़ा होकर बोला – 'बाबू, तुम तो कैते थे न कि माँ को दिखाने ले चलते हैं। माँ कहाँ है, बतलाओ?'

बाबू ने किंचित हँसकर कहा – 'ये माँजी बैठी हैं, इनसे कहो, यही तुम्हें दिखायेंगी।'

बालक ने मचलकर कहा – 'ऊँ हूँ, तुम दिकाओ। और इसी समय एक बड़ी–सी सफेद बिल्ली आँगन से होती हुई भीतर को भाग गयी। बच्चे बिल्ली के पीछे सब कुछ भूलकर, दौड़ते हुए अन्दर पहुँच गये। गौरी पिछले बरामदे में चुपचाप खड़ी थी। वह न जाने किस ख्याल में थी। तब तक छोटे बच्चे ने उसका आँचल पकड़कर खींचते हुए पूछा – क्या तुम अमारी माँ हो?'

गौरी ने देखा, हृष्ट–पुष्ट सुन्दर सा बालक, कितना भोला, कितना निश्छल। उसने बालक को गोद में उठाकर कहा – 'हाँ।'

बच्चे ने फिर उसी स्वर में पूछा – 'अमारे घर चलोगी न? बाबू तो तुम्हें लेने आये हैं और हम भी आये हैं।'

अब तो गौरी उसकी बातों का उत्तर न दे सकी। पूछा

– 'मिठाई खाओगे?'

'हाँ खायेंगे', दोनों ने एक ही साथ एक स्वर में उत्तर दिया।

कुछ क्षण बाद कुन्ती ने अन्दर देखा कि छोटा बच्चा गौरी की गोद में और बड़ा उसी के पास बैठा मिठाई खा रहा है। एक निःश्वास के साथ कुन्ती बाहर चली गयी और थोड़ी देर बाद ज्योंही गौरी ने ऊपर आँख उठाई, उसने माता–पिता दोनों को सामने खड़ा पाया। पिता ने स्नेह से स्वर में पुत्री से कहा – 'बेटा जरा चलो, चलती हो न?'

गौरी ने कोई उत्तर न दिया। उसने बच्चों का हाथ–मुँह धुलाया, उन्हें पानी पिलाया फिर माँ के पीछे–पीछे बाहर चली गयी। बच्चे अब भी उसी को घेरे थे। वे उसे छोड़ना नहीं चाहते थे। बड़ी मुश्किल से सीतारामजी उन्हें बुलाकर कुछ देर तक अपने पास बिठा सके, किन्तु जरा–सा मौका पाते ही वे फिर जाकर गौरी के आस–पास बैठ गये। पिता के विरुद्ध उन्हें कुछ नालिशें भी दायर करनी थीं, जो पिता के पास बैठकर न कर सकते थे।

छोटे ने कहा – 'बाबू हमें कभी खिलौने नहीं ले देते।'

बड़े ने कहा – 'मिठाई भी तो कभी नहीं खिलाते।'

छोटा बोला – 'औल अमे छोड़कर दफ्तर जाते हैं, दिन भर नई आते बाबू अच्छे नहीं है।'

बड़ा बोला – 'माँ तुम चलो, नहीं तो हम भी यहीं रहेंगे।'

बच्चों की बातों से सभी को हँसी आ रही थी। कुन्ती ने बच्चों से कहा – 'तो तुम दोनों भाई यहीं रह जाओ, बाबू को जाने दो, है न ठीक?'

का चढ़ाव उतार देखता रहा, फिर मैंने उसका कमजोर लागर हाथ अपने हाथ में ले लिया और कुछ देर तक हम यों ही खामोश बैठे रहे। फिर मैं बोला, ''लीजिये अब तो मैं आपके पास आ गया, कुछ बातें कीजिये, आप इतनी चुप क्यों हैं?'' उसने जवाब दिया, ''मैं क्या बातें करूँ, खैर आप आ गये।'' मैंने सहसा महसूस किया कि इस तरह बाम नहीं चलने का। मैंने जल्दी से कहा ''वाह, आपको तो मुझसे बहुत कुछ कहना है। इतने दिन जो मैं यहाँ नहीं रहा तो आप क्या करती रहीं और कैसी रहीं। सब मुझे बताइये। आखिर इतने दिन आपने मुझसे बातचीत नहीं की थी, अब उसकी कसर निकालिये। याद है आपको, आपने मुझको एक दफा खत में लिखा था कि आपको एक हमदम व दमसाज की जुस्तूजू हैं। मैं ही वह शख्स हूँ और अब आपके पास इसलिए हूँ कि हर वक्त आपके पास रहूँ, और कभी आपसे जुदा न होऊँ।''

मगर मेरी तमाम कोशिशें बेकार साबित हुईं। मेरी बातों से जाहिर था कि रटे हुए पाठ की तरह ऊपरी हैं और उनसे मेरी बीवी को कोई तसल्ली नहीं हुई। कुछ देर तक मुझे यह उम्मीद रही कि उसको शायद इसका एहसास नहीं हुआ। मगर वह घबड़ाहट और बेचैनी से मेरी टोपी उठाकर हाथों से मलने–दलने लगी और फिर ऐसी गुफ्तगू हुई कि मुझे अपनी नाकामयाबी का यकीन हो गया। उसने कहा ''भला मैं क्या कहूँ? यहाँ तो जैसे दिन वैसी रात। लेकिन आप क्यों चुप हैं। आपको नये–नये तजुर्बे हुए होंगे। नये मामलों से साबका पड़ा होगा। आप मुझसे उन सब बातों का तजकिरा कीजिए। वहाँ की अजीब–अजीब चीजें, तरह – तरह की मशीने, किस्म – किस्म के लोग, नई जिन्दगी। आप लिखा

जारी रखूंगा, अपने ससुर और सास से किस तरह मिलूंगा, उनसे साफ–साफ बातें करूँ या उनकी तरफ से बेरुखी वगैरा–वगैरा। सिर्फ अपनी बीवी से मिलने की तमन्ना बाकी है। यही नहीं, बल्कि जरा जरा सी रोजाना जिन्दगी की समस्याओं ने मेरी तमन्नाओं और जोश का खात्मा कर दिया। घर पहुँचने पर ये समस्याएँ विकृत सच्चाइयों में बदल गयीं जिनसे बच पाना मुमकिन नहीं था। पुराने जमाने की जिन जिन दिलफरेबियों की मैंने अपने जहन में तस्वीर खींची थी उनका कहीं पता नहीं था। बजाए इसके खुद को मैंने तंग व तारीक, गंदी, जुल्म व जाहिलियत से लबरेज एक दुनिया में बन्द पाया। स्टेशन पर जो लोग मुझसे मिलने आये, उनमें ज्यादातर बेहूदा, बदमाश, तंज नजर, संकरी सोच वाले नाकारा किस्म के आदमी थी। उन सबने बहुत खुशी के साथ मेरा स्वागत किया, मुझे हार पहनाया, मुझ पर फिकरे कसे गये। वही पुराने गैरशालीन, भोंडे मजाक हुए और दूसरों की बुराइयाँ की गयीं। कई दिनों तक जलसों, बैठकों और दावतों का सिलसिला रहा। इसके बाद कहीं उन लोगों से निजात मिली। इस दरम्यान मैं अपनी बीबी से सिर्फ थोड़ी–थोड़ी देर के लिए मिल सका। लेकिन उसके तेल से चिपके हुए बाल, उसका लागर जिस्म और जर्द चेहरा, दावतों, संगीत व नाच की महफिलों और इधर–उधर बातचीत के वक्त भी बारहा मेरी नजर में सामने आ जाता था।

जब सब मेहमान रुख्सत हो गये तो मैं अपनी बीवी के पास गया और उसके करीब पलंग पर जा कर बैठा। वह खामोश लेटी रही और मेरी तरफ उसने नजर उठाकर नहीं देखा। मैं थोड़ी देर तक तो उसकी साँस के साथ उसके सीने

काफी देर हो गयी। यह देखकर सीतारामजी ने कहा – 'समय बहुत हो चुका है, अब चलूँगा, नहीं तो शाम की ट्रेन न मिल सकेगी।' फिर राधाकृष्ण की तरफ देखकर कहा – 'आप लोगों से मिलकर बड़ी प्रसन्नता हुई। लड़की आपकी साक्षात लक्ष्मी है। और यह मैं जानता था कि आपकी लड़की ऐसी ही होगी, इसीलिए देखने को आना नहीं चाहता था।' फिर कुछ ठहरकर बोले – 'और सच तो यह है कि मुझे पत्नी की उतनी जरूरत नहीं, जितनी इन बच्चों की जरूरत है एक माँ की। मेरा क्या ठिकाना? आज बाहर हूँ तो कल जेल में। मेरे बाद इनकी देखरेख करने वाला कोई नहीं रहता। यही सोच–समझकर विवाह करने को तैयार हो सका हूँ, अन्यथा इस उमर में विवाह?' कहकर वे स्वयं हँस पड़े।

राधाकृष्ण ने मन–ही–मन सोचा – तो मेरी लड़की इनके बच्चों की धाय बनकर जायेगी। कुन्ती ने सोचा – कोई भी स्त्री ऐसे बच्चों का लालन–पालन कर अपना जीवन सार्थक बना सकती है। गौरी ने मन–ही–मन इस महापुरुष के चरणों में प्रणाम किया और बच्चों की ओर ममता भरी दृष्टि से देखा। जैसे यह दृष्टि कह रही थी कि किसी विलासी युवक की पत्नी बनने से अधिक मैं इन भोले–भाले बच्चों की माँ बनना पसन्द करूँगी। सीतारामजी को जाने के लिए प्रस्तुत देखे, बच्चे फिर गौरी से लिपट गये। यदि राधाकृष्ण झूठ ही सही, एक बार भी कहते कि बच्चों को छोड़ जाओ तो सीतारामजी बच्चों को छोड़कर निश्चिन्त होकर चले जाते। परन्तु इस ओर से जब ऐसी कोई बात न हुई तो बच्चों को सिनेमा, सर्कस और मिठाई का प्रलोभन देकर बड़ी कठिनाई से गौरी से अलग करके वे ले जा सकते। जाते समय सीताराम जी

का पक्का विश्वास था कि विवाह होगा, केवल तारीख निश्चित करने भर की देर है।

******

सीतारामजी उस पत्र की प्रतिक्षा में थे जिसमें विवाह की निश्चित तारीख लिखकर आने वाली थी। देश की परिस्थिति, गवर्नमेंट का रूख, और महात्माजी के वक्तव्यों को पढ़कर वे जानते थे कि निकट भविष्य में फिर सत्याग्रह संग्राम छिड़ने वाला है। न जाने किस दिन उन्हें फिर जेल का मेहमान बनना पड़े। पिछली बार जब गये थे, तब उनकी बूढ़ी बुआ थीं, पर अब तो वे भी नहीं रहीं। यह कहारिन क्या बच्चों की देखभाल कर सकेगी। बच्चों की उन्हें चिन्ता थी। और बच्चे भी सदा ही माँ–माँ की रट लगाये रहते थे। उन्होंने सीतारामजी के पत्र के उत्तर में लिख भेजा की गौरी की माँ पुराने ख्याल की हैं। वे बिना जन्मपत्री मिलवाये विवाह नहीं करना चाहतीं, अतएव आप अपनी जन्मपत्री भेज दें। पत्र पढ़ने के साथ सीतारामजी को यह समझने में देरी न लगी कि यह विवाह न करने का केवल बहाना मात्र है, किन्तु फिर भी उन्होंने जन्मपत्री भेज दी। जन्मपत्री भेजने के कुछ ही दिन बात उत्तर भी आ गया कि जन्मपत्री नहीं मिलती, इसलिए विवाह न हो सकेगा। क्षमा कीजिएगा।

बाबू राधाकृष्ण को गौरी के लिए दूसरा वर मिल गया था, जो उनकी समझ से गौरी के बहुत योग्य था। धनवान ये भी अधिक न थे। पर अभी अभी नायब तहसीलदार के पद पर नियुक्त हुए थे और आगे भी उन्नति की आशा थी। बी.ए. पास थे। देखने में अधिक सुन्दर न थे। बदशकल भी कहे जा सकते थे, पर पुरुषों की भी कहीं सुन्दरता देखी जाती है?

जाएँ और कभी – कभी खत लिख दिया करें। मेरे लिए यही बहुत है। बल्कि कभी – कभी तो तुझे यह ख्याल होता है कि आपका मुझसे दूर ही रहना बेहतर है। मुझे डर इस बात का है कि जैसे बीमारी के बाद से मैं यहाँ करीब – करीब सबके लिए बेगानी सी हो गई हूँ, वैसे ही कहीं मैं आपको न खो बैठूँ। दिन – रात मेरी बुरी हालत देखकर कहीं आपका दिल भी मेरी तरफ से न हट जाये। वहाँ से तो आप महज इसकी कल्पना कर सकते हैं और मैं आपकी अपनी जिन्दगी के मुकम्म्ल महाफिज के तौर पर कल्पना करती हूँ, जिसकी मेरे दिल की तमन्ना है।''

जब मुझे यह खत मिला तो मुझ पर इश्क व मोहब्बत की एक लहर सी दौड़ गयी। गो की वह बीमार थी और उसे रोग लग गया था मगर उसको सीने से लगाना मेरा फर्ज था। मैं यह साबित कर देना चाहता था कि मेरी मोहब्बत में कोई बात हायल नहीं हो सकती है। मैं चाहता था कि उसे मालूम हो जाये कि मैं ही वह सच्चा साथी हूँ, जिसकी उसे तलाश थी। मैंने अपने को कुसूरवार और बुरा करार दिया और उसको मासूम व निर्मल। जैसी उसने मेरे साथ खाकसारी बरती और मेरी खिदमत की, मेरा भी फर्ज था कि मैं भी उसके साथ वैसा ही सलूक करूँ। यह फैसला करके मैं अपना काम छोड़कर घर की तरफ चल खड़ा हुआ।

मैं अभी रास्ते में ही था कि मेरे जब्बात में तब्दीलियाँ होने लगीं। वह शुरू का सा पाक जज्बा बिल्कुल गायब हो गया और रोजमर्रा की छोटी – छोटी बातों की तरफ मेरे ख्यालात दौड़ने लगे। मसलन, रोजी कमाने का मैं कौन सा रास्ता निकालूंगा, अपने दोस्तों में किन किन से मुलाकात

खत मिला। मैं बेकरार हो गया और फौरन छः हजार मील के फासले से वतन की तरफ चल पड़ा। उसके खत में लिखा था

''मैंने अभी तकिया के नीचे से फिर आपका खत निकाल कर पढ़ा। बहुत मुख्तसर है। शायद आप अपने काम में मशगूल होंगे। मगर खैर मुझे इसकी कोई शिकायत नहीं। बस मुझे आपकी खैरियत मालूम होती रहे और आप अच्छे रहें, खुश रहें, मेरे लिए यही काफी है। जब से मैं बीमार हूँ, सिवाय इसके कि आपको याद करूँ और उन अजीब–अजीब चीजों और नये – नये लोगों का ख्याल करूँ जिनसे आप वहाँ मिलते होंगे, मुझे और काम नहीं। मुझसे चला नहीं जाता, इस वजह से पलंग पर पड़ी – पड़ी तरह तरह के ख्याल किया करती हूँ। कभी तो इसमें लुत्फ आता है, और कभी इससे सख्त तकलीफ होती है। जब लोग मेरी सेहत के बारे में गुफ्तगू करते हैं और मुझसे हमदर्दी जाहिर करते हैं और नसीहत करते हैं तो मुझे बड़ी कोफ्त होती है। यह लोग यह तक नहीं समझते कि मुऐ क्या रोग है। उन्हें सिर्फ अपने दिल की तसकीन के लिए मेरे ऊपर रहम आता है। अपने माँ–बाप पर भी मैं भार हूँ। वे अपने दिल में ख्याल करते होंगे कि बावजूद मेरी शादी हो जाने के मैं ऐसी बदनसीब हूँ कि उनके गले पड़ी हूँ। इसका नतीजा यह है कि मैं हर वक्त इस कोशिश में रहती हूँ कि बहुत ज्यादा मायूसी और रंज जाहिर न करूँ और मेरे माँ–बाप ऐसी कोशिशें करते हैं जिससे यह जाहिर होता है कि उन्हें मेरी बीमारी की वजह से बड़ी ऊहापोह और चिंता है। गरज दोनों तरफ बनावट है। मैं आपसे किसी बात की शिकायत नहीं करना चाहती और न आपके काम में रुकावट डालना चाहती हूँ। आप मुझे भूल न

उमर कुछ अधिक न थी, यही 24–25 साल। लेने–देने का झगड़ा यहाँ भी न था। पहली शादी थी और माँ–बाप, भाई–बहन से भरा–पूरा परिवार था। राधाकृष्णजी इससे अधिक और चाहते ही क्या थे? ईश्वर को उन्होंने कोटिशः धन्यवाद दिये, जिसकी कृपा से ऐसा अच्छा वर उन्हें गौरी के लिए मिल गया।

विवाह आगामी आषाढ़ में होना निश्चित हुआ। दोनों तरफ से विवाह की तैयारी हो रही थी। राधाकृष्णजी की यही तो एक लड़की थी। वे बड़ी तन्मयता के साथ गहने–कपड़ों का चुनाव करते थे। सोचते थे – देर में शादी हुई तो क्या हुआ, वर भी तो कितना अच्छा ढूँढ़ निकाला है। कुन्ती भी बहुत खुश थी। उसकी आँखों में वह दृश्य झूलने लगता था कि उसका दामाद छोटा साहब हो गया है, बेटी–दामाद छोटे–छोटे बच्चों के साथ उससे मिलने आये हैं। किन्तु बच्चों की बात सोचते ही उसे सीतारामजी के दोनों बच्चे तुरन्त याद आ जाते और आ जाती उनकी बात। बच्चों की देख–रेख करने वाला कोई नही है। फिर वह सोचती – ऊँह, दुनिया में और भी तो लड़कियाँ हैं। कर लें शादी, क्या मेरी गौरी ही है। इस प्रकार की पति–पत्नी दोनों ही प्रसन्न थे, पर गौरी से कौन पूछता है कि उसके हृदय में कैसी हलचल मची रहती है। रह–रहकर उसे उन बच्चों का भोला–भाला मुँह और मीटी–मीटी बातें याद आ जाती और साथ ही याद आ जाते विनयी, नम्रता और सादगी की प्रतिमा सीतारामजी। उनकी याद आते ही श्रद्धा से गौरी का माथा अपने आप ही झुक जाता। देश–भक्त त्यागी वीरों के लिए उसके हृदय में बड़ा सम्मान था। सीतारामजी ने भी तो देश के लिए अपने जीवन का उत्सर्ग

कर दिया है। नहीं तो बी.ए. पास करने के बाद क्या प्रयत्न करने पर भी उन्हें नायब तहसीलदार न मिल जाती? मिलती क्यों नहीं? पर सीतारामजी सरकार की गुलामी पसन्द करते तब न? दूसरी ओर थे उसके होने वाले वर – नायब तहसीलदार साहब, जिन्हें अपने आराम, अपने ऐश के लिए, ब्रिटिश गवर्नमेंट के जरा से इंगित मात्र पर निरीह देशवासियों के गले पर छुरी फेरने में जरा भी संकोच या हिचक नहीं। जिनके सामने कुछ चाँदी के टुकड़े फेंक दिये जाते हैं और वह दुम हिलाते हुए, निंद्य–से–निंद्य कर्म करने में भी किंचित लज्जित नहीं होते। घृणा से गौरी का जी भर जाता, किन्तु उसके इन मनोभावों को जानने वाला यहाँ कोई भी न था। वह रात–दिन एक प्रकार की अव्यक्त पीड़ा से विकल–सी रहती। बहुत चाहती थी कि अपनी माँ से कह दे कि वह नायब तहसीलदार से शादी न करेगी, किन्तु लज्जा उसे कुछ भी न कहने देती। ज्यों–ज्यों विवाह की तिथि नजदीक आती, गौरी की चिन्ता बढ़ती ही जाती थी।

विवाह की निश्चित तारीख से पन्द्रह दिन पहले एक दिन एकाएक तार आया कि नायब तहसीलदार साहब के पिता का देहान्त हो गया। इस मृत्यु के कारण विवाह साल भर को टल गया। गौरी के माता–पिता बड़े दुखी हुए किन्तु गौरी के सिर पर से जैसे चिन्ता का पहाड़–सा हट गया।

*****

इसी बीच सत्याग्रह आन्दोलन की लहर सारे देश भर में बड़ी तीव्र गति से फैल गई। शहर–शहर में गिरफ्तारियों का ताँता–सा लग गया। रोज ही न जाने कितने गिरफ्तार होते, कितनों की सजा होती। कहीं लाठी चार्ज! कहीं 144!

कि मेरी बीवी को मरते वक्त मुझसे नफरत होगी। मैंने उसको तकलीफ और मौत से बचाने के लिए कौन सी बात उठा रखी थी। मगर नहीं। मैं ही, उसकी मौत का कारण हुआ, मैंने ही उसको दर्द और दुख पहुँचाया। मर्दों की जहालत और हिमाकत की कोई इंतहा नहीं मगर यह भी कहना सही नहीं कि मैं जहालत और हिमाकत का शिकार था। यह सरासर गलत है। दरअसल मुझे गरूर के पंजे ने जकड़ लिया था। इसकी मुझे एतराफ है।

हमारी शादी ऐसी उम्र में हुई थी, जब हममें एक दूसरों के जज्बात समझने की सलाहियत तक न थी। लेकिन बाद में जो हादसा पेश आया, उसका इल्जाम मैं किस्मत या ऐसे हालात पर जिन पर मुझे कोई काबू न था, नहीं रखना चाहता था।

मुझे अपनी बीवी से कभी मोहब्बत नहीं हुई और होती भी तो कैसे हम जिन्दगी के दो अलग दायरों में चक्कर लगा रहे थे, मेरी बीवी पुराने जमाने की तंग व अंधेरी गलियों में और मैं नये जमाने की साफ – चौड़ी और पक्की सड़कों पर। लेकिन जब मैं दूसरे मुल्कों में गया और उससे कई बरस तक जुदा रहा तो कभी – कभी मेरा दिल उसके लिए बैचेन होता था। वह अपने छोटे–से मजबूत पुराने किले में थी और मैं जिन्दगी की गहमागहमी में फिजूल और बेफैज इश्कबाजी से तंग आकर कभी – कभी उस पाक व बोवफा औरत का ख्वाब देखा करता था जो बिना किसी मुआवजा के मुझे पर सब कुछ लुटाने को तैयार थी। जब मेरी यह कैफियत होती तो बेताबी के साथ मुझे उससे मिलने की ख्वाहिश होती। एक दफा मुझ पर ऐसी ही कैफियत हावी थी कि मुझे उसका एक

जवांमर्दी

महमूदुज्जफर

लेखक परिचय

जन्म : 1903, रामपुर में। शिक्षा : रामपुर, दिल्ली, आक्सफोर्ड, कृतियाँ : अंगारे में संकलित एक कहानी के अतिरिक्त, सोवियत रूप का यात्रा वृतांत, क्वेस्ट ऑफ लाइफ (1954) तथा अंग्रेजी में अनेक निबन्ध।

निधन : 1956।

*****

जवांमर्दी

वह मेरी बीवी जा रही है। मगर उसके होंठो पर उस मुस्कुराहट का नाम तक नहीं जैसे कि लोगों ने मेरे दिल की तस्कीन के लिए मुझसे कहा था। बस हड्डियों का एक ढाँचा है। उसकी भयानक सूरत से जाहिर होता है कि वह किसी जानलेवा बीमारी का शिकार है और मौत का डर उस पर हावी है। उसकी आँखों में मेरे लिए अब दिलचस्पी और प्यार की जगह, बेगानगी और नफरत है। मैं इसी लायक था। इस नफरत की वजह वह नवजात बच्चा है जिसका सर उसके कूल्हे की हड्डियों में अब तक फँसा दिखाई देता है जिसकी वजह से उसकी जान गयी, यह भला कौन सोच सकता था

सरकार की दमन की चक्की बड़े भयंकर रूप से चल रही थी। गौरी को चिन्ता थी उन बच्चों की। जब से सत्याग्रह संग्राम छिड़ा था, तभी से उसे फिकर थी कि न जाने कब सीतारामजी गिरफ्तार हो जाएँ। और फिर वे बच्चे बेचारे– उन्हें कौन देखेगा। रोज का अखबार ध्यान से पढ़ती और कानपुर का समाचार तो और भी ध्यान से देखती थी। और इसी प्रकार उसने एक दिन पढ़ा कि राजद्रोह के अपराध में सीतारामजी गिरफ्तार हो गये और उन्हें एक साल का सपरिश्रम कारावास हुआ है। इस समाचार को पढ़कर गौरी कुछ क्षणों तक स्तब्ध–सी खड़ी रही फिर कुछ सोचती हुई टहलने लगी। कुछ ही देर बाद उसने अपना कर्त्तव्य निश्चित कर लिया। वह माँ के पास गई। माँ कोई पुस्तक देख रही थी। उसने अपने सारे साहस को समेटकर दृढ़ता से कहा – 'माँ, मैं कनपुर जाऊँगी।'

'कानपुर में क्या है?' – आश्चर्य से कुन्ती ने पूछा।

गौरी – 'वहाँ बच्चे हैं।'

माँ ने उसी स्वर में कहा – 'बच्चे? कैसी बात करती हो गौरी, पगलों की सी?'

गौरी – 'नहीं माँ, मैं पागल नहीं हूँ। बच्चों को तुम भी जानती हो। उनके पिता को राजद्रोह के मामले में साल भर की सजा हो गई है। बच्चे छोटे हैं। मैं जाऊँगी माँ। मुझे जाना ही पड़ेगा।'

गौरी के स्वभाव से कुन्ती भली – भाँति परिचित थी। वह जानती थी कि गौरी जिस बात की हठ पकड़ती है, कभी छोड़ती नहीं। अतएव सहसा वह गौरी का विरोध न कर सकी, बोली – 'पर तेरे बाबूजी तो बाहर गये हैं, उन्हें तो आ जाने

दे।'

पर गौरी ने दृढ़ता के साथ कहा – 'बाबूजी के आने तक नहीं ठहर सकूँगी माँ। मुझे जाने दो। रास्ते में मुझे कुछ कष्ट न होगा। अब मैं काफी बड़ी हो गयी हूँ।'

और उसी दिन शाम को एक नौकर के साथ गौरी कानपुर चली गयी।

साल भर बाद –

अपनी सजा पूरी करके सीतारामजी घर लौटे। इस साल भर के भीतर उन्होंने एक बार भी बच्चों को न देखा था। उन्हें कायदे के अनुसार हर महीने उनका कुशल–समाचार मिल जाता था, पर लगातार उन्हें बच्चों की चिन्ता बनी ही रहती थी। जिस कहारिन के भरोसे वे बच्चों को छोड़ गये थे, उसके भी तीन–चार बच्चे थे। वह बच्चों को कैसे रखेगी, सो सीतरामजी जानते थे पर विवशता थी क्या करते। सवेरे – सवेरे छै बजे ही जले से मुक्त कर दिये गये। एक ताँगे पर बैठकर वे घर की ओर चले। जेब में कुछ पैसे थे। एक जगह गरम – गरम जलेबियाँ बन रही थीं। बच्चों के लिए थोड़ी सी खरीद लीं। घर के दरवाजे पर पहुँचे। दरवाजा खुला था। घर के अन्दर पैर रखने में हृदय धड़कता था। न जाने बच्चे किस हालत में हों। वे चोरों की तरह चुपके–चुपके घर में घुसे। परन्तु यह क्या? आँगन में पहुँचते ही वे ठगे से खड़े रह गये। फिर जरा आगे बढ़कर उन्होंने कहा – ''आप?''

गौरी ने झुककर उनकी पद धूलि माथे से लगा ली।

*****

समय बीत गया। प्रमुख का चुनाव, फिर आ गया। रनवीर खड़े हुए। हवा कुछ ऐसी चली कि तीन उम्मीदवार, चुनाव के पहले ही, घुटने टेक गये। एक बचा, वह भी लुहार का लड़का। नादान था शायद।

रनवीर, चुबह ही चले गये। शाम को वोट डालकर, मैं भी लौट आयी।

*****

रनवीर रात को, थके हुए लौटे।

समझने को कुछ शेष नहीं था। मैं पराजय पर, उन्हें सांत्वना देने लगी। पति को दिलासा देने का, हर संभव प्रयास किया था मैंने। तन से, मन से।

तभी बाहर से देववीर का स्वर कानों में पड़ा। ''अगर एक वोट और होता, तो भईया हारते नहीं।''

एक वोट।

विश्वास नहीं कर सकी। मेरे भीतर सब कुछ, डाँवा डाले होने लगा। लेकिन क्या करती?

उस दिन, मैं अपने भीतर की इसुरिया को, मार नहीं पाई।

क्षमा करना,

आपकी
बसुमती

*****

कठिन शब्दार्थ

लाज–लिहाज = सभ्यता

वे क्रोध से काँपने लगे।

''कैसा फैसला? जैसा तुम करके आई हो?''

''सुन ले, मजबूरी में खड़ी करनी पड़ी तू। मैं दो–दो पदवी नहीं रख सकता था। सोचा था, पत्नी से भरोसे मंद कौन होगा?''

'भरोसेमंद' शब्द कहते हुए, उनके चेहरे पर जहरीली हँसी उभर आई, जो मेरे कलेजे में धार बनकर उतर गई। लगा सब कुछ छोड़, कहीं चली जाऊँ।

काश, मैं इसुरिया होती। मान–मर्यादा की दीवारों से मुक्त। थोथी परम्पराओं से परे।

सुबह उठी, तो करुण स्वर सुनकर घबरा उठी।

''वीरथा है तेरी विद्या! खाक है तेरी पढ़ाई!'' छट पटाती इसुरिया की आवाज थी।

हरदेई ने कुएं में कूद कर, जान ने दी थी।

मैं निढ़ाल होकर, आँगन में ही बैठ गई। रात ही रात किसने, पंचों का फैसला बदल डाला। किसने रोका उसे, अपने पति के संग जाने से।

*****

इसुरिया मुझे झकझोर कर कहती रही, ''अच्छा होता हम अपना वोट, काठ की लठिया को दे आते। निर्जीव लकड़ी को। उठाए उठती तो, बैरी पर वार तो करती। पर रनवीर की दुल्हन, तुम तो बड़े घर की बहू ही रही। पिरमुखजी की पत्नी।''

लग रहा था जेसे, हरदेई की अर्थी, मेरे ही घर से उठी हो।

कठिन शब्दार्थ

कुली = बोझ उठाने वाला, नम्र = विनय, व्यथित = दुःखी, अलावा = अतिरिक्त, इतवार = रविवार, मुश्किल = कठिन, दिखलाने = बताने, तारीख = दिनांक, सजा = दंड

फैसला

मैत्रेयी पुष्पा

लेखक परिचय

मैत्रेयी पुष्पा हिन्दी की प्रसिद्ध लेखिका होने के साथ, एक संवेदनशील कवियत्री भी हैं। इनका जन्म 1944 को उत्तर प्रदेश के अलीगढ़ जिले के गाँव में हुआ था। इनकी रचनाओं में नारी, ग्रामीण परिवेश की पृष्ठभूमि में रहकर भी, अपने अधिकारों के प्रति सचेत रहती है।

इनके उपन्यासों में, स्मृतिदंश, बेतवा बहती राही, इदन्नमम् तथा कहानी संग्रहों में चिन्हार, ललमनियाँ एवं कविता संग्रह लकीरें, चर्चित हैं। इनकी रचनाओं का अंग्रेजी के अलावा तमिल, कन्नड़ तथा उर्दू में भी अनुवाद हुआ है। मैत्रेयीजी को हिन्दी अकादमी कृति सम्मान, प्रेमचन्द सम्मान, नंजनागुडू तिरूमालम्बा शश्वती पुरस्कार एवं कथा पुरस्कार से भी, सम्मानित किया गया है। मैत्रेयी जी की लेखनी आज भी, समाज के आडम्बरों से जूझती, ग्रामीण नारी पात्रों का सृजन कर रही है।

फैसला भी ऐसी ही एक नारी की कहानी है।

*****

कुछ दिन बाद, एक वृद्धा ने किवाड़, आ खटखटाया

''ओ बेटा?? बसुमती?''

मैं पोर में आ गई। बूढ़ी अम्मा पाँवों में गिर पड़ीं, ''बेटी लाचारी तो समझ हमारी। जमाई को छुट्टी नहीं मिलेगी, हमारी बेटी हरदेई का फैसला करवा बहू।''

मैं खड़ी–खड़ी सुनती रही।

''बेटी, लड़की का दर्द नहीं देखा जाता। बाप तो राच्छत है, चैन से जीना नहीं बदा हमारे भाग में'', कहते–कहते उसकी आँखों से आँसू की धार बह उठी।

*****

उस समय, न जाने कैसे निर्णय ले डाला कि ठिठके कदम अम्मा के साथ चल पड़े। देवर देववीर रोकता ही रह गया।

फैसला करवा कर आई, तो मन में अपार संतोष था। पंचायत का चबूतरा, मंदिर सा लगा था।

उस रात, रनवीर की बातों का जहर, मुझे सिर से पाँच तक नहला गया।

''कचहरी करने का शौक था, तो वकालत पढ़ ली होती। ये नौटंकी कब बंद करोगी, बताओ।''

डर से, मेरी घिग्गी बँधने लगी। फिर भी न जाने कैसे शब्द होठों से झड़ पड़े।

''हरदेई गिड़गिड़ा रही थी। काश! तुमने उसका फैसला कर दिया होता। तुम तो सब जानते हो, क्यों नहीं छुड़ाते उसे, बाप के चुंगल से।''

*****

जाने पर, मैं उनके पास जा खड़ी हुई।

*****

''रनवीर?''

वह मुँह खोले देखते रह गए।

''मजूर आए थे मेरे पास, उनकी गारा... पत्थर, ढुलाई की मजूरी, अभी तक....? गाँव की औरतें ताना देती हैं, कि भली हुई तुम प्रधान, अपने द्वार पर ही पक्का खंरजा करा लिया। अपनी गली ही पत्थरों से जड़ ली, हमसे क्या बैर था बहन, जो कीचड़ में ही छोड़ दिया।''

''कौन कहेगा कि पिरमुख का गाँव है? गड्‌ढ़ों में पानी, मच्छर, कूड़ा–करकट कुछ भी तो नहीं हुआ जवाहर रोजगार योजना के पैसे से....'', मैं कहती चली गई।

''गाँव की औरतें कह रही थीं, या तुम? ये औरतें कब से बोलने लगी? हमसे तो कभी किसी ने, कुछ नहीं पूछा और तुमसे इतने सवाल,'' रनवीर की भाषा, बड़ी तीखी थी।

काँपते हाथों से, मैंने चुपचाप लिख दिया।

'बसुमती देवी'

दस्तखत!

*****

इस रुपये को जिस दिन लाई थी, उस दिन गाँव के लिए चमचमाते स्कूल, पक्की गलियों, रोजगार और न जाने क्या–क्या सपने साधे थे।

मेरी ही छः अक्षर के दस्तखत ने, सपनों के घरोंदे को कण–कण आहत कर डाला।

फैसला

आदरणीय मास्साब,

सादर प्रमाण,

शायद आपने सुन लिया हो, चुनाव परिणाम घोषित हो गया।

आज भी मैं चकित रह गई जैसे अपनी जीत के दिन।

कभी सोचा न था कि प्रधान पद के लिए चुनी जा सकूँगी।

कैसे मिले इतने वोट?

*****

कारण समझ आया, जब मैंने औरतों को प्रसन्न देखा।

बहनों को धन्यवाद देने, मैं पथरवारे जा पहुँची। वैसे मेरा, वहाँ जाना ठीक नहीं माना जाता। रनवीर तो कह ही चुके थे कि तुम, अब सिर पर तसला धरे नहीं सोहती। आखिर प्रमुख की पत्नी हो।

जब मैं प्रधान बन गई, तो हर जगह उनका और हमारे गाँव का सम्मान, बढ़ गया।

मैं गाँव की औरतों से, दूरी बनाये रखने के आदेश तले दबने लगी। पर मैं उनके बीच, पहुँच ही जाती।

इसुरिया के बारे में तो आपको, मैंने बताया था।

हम दोनों गाँव में, एक ही दिन ब्याहकर आये थे। शरमाना उसका स्वभाव नहीं।

एक दिन बकरियाँ हाँकते, वह पथनवारे में आ गई।

''ओ बसुमतिया??....? ओर पिरमुखनी?''

सब हँस पड़ी।

*****

झमक कर बोली, ''पिरधान हो गयीं, चलो सुख हो गया, ए?? सब जनी सुनो? बरोबरी का जमाना है। अब मरद मारे, तो आ जाना बसुमती के ढ़िंग। करवा देना जेहल। ओ बसुमतिया? रनवीरा की तरह, अन्याय तो न करेगी?''

''मेरे मरद ने पीटा था तो रनवीर को कागद, मैंने खुद पकड़ाया था। रन्ना ने कागद दाब लिया, मरद फिर चढ़ आया छाती पर।''

इसुरिया ने बाहें उघाड़ दीं। जगह–जगह खंरोचों के निशान थे। सबके मुँह मुरझा गये।

''सुन लो, रनवीर एक दिन चाखी पीसेगा और हमारी बसुमती राज करेगी....'' इसुरिया कहती चली गई।

सुबह सवेरे चूल्हा जलाकर, मैंने तवा रखा ही था कि आवाज आई।

''बसुमती, ओ बसुमतिया.....'' इसुरिया थ।

''तेरी सौं बसुमती, पंच तेरी परतिच्छा में चौतरें पर बैठे हैं।'' वह खुशी से खिल रही थी।

सभा में जाने लगी, तो औरतें घरों से झाँकने लगीं। यह देखने कि मैं, घूँघट डाले हूँ या नहीं।

*****

माथे तक साड़ी का किनारा। न घूँघट था न खुला।

चबूतरे के नजदीक पहुँचते ही, रनवीर लपककर पहुँच गये। कठोर आवाज में बोले, ''कहाँ?''

उत्तर इसुरिया ने दिया, ''पिरमुख जी हम पंचायत में जा रहे हैं। रास्ता दो।''

वे मुझ से बोले, ''घर चलो तुम।''

इसुरिया, मुँह बाये देखती रही।

मैं झुलस गई। सारी उमंग मर गई। विवश इसुरिया भी, मेरे पीछे–पीछे लौट आई।

इसुरिया बड़बड़ाती रही, ''लो हद हो गई, बसुमतिया प्रधान और राज करे रनवीर। प्रधानी से इन्हें अब क्या अपनी पिरमुखी संभालें।''

घुटन भर गई मेरे सीने में।

सास्साब, मेरी आत्मा में किचें चुभती रह गई।

*****

रनवीर ने लोटक्र खूब समझाया।

''पंचायती चबूतरे पर बैठती, तुम शोभा देंती। लाज–लिहाज मत उतारो।''

उस दिन के बाद, पंचायती चबूतरे से बुलावे आते रहे। देहरी उलाँघते ही कोई बरजने लगता। पता नहीं मुझमें ही हिम्मत नहीं थीं। उत्तर मन में उबलता। भड़ास होठों तक आती फिर दूध के झाग सा, बैठ जाता विरोध।

मास्साब, मैंने कई दिनों तक सोचा था, दस्तखत नहीं करूँगी। करने दो मनमानी। रनवीर रजिस्टर लिए, चारपाई पर बैठे थे। कई बार पुकार चुके थे। आखिर उनके झल्ला